चन्दामामा

दीपावली विशेषांक





काशी के राजा ब्रह्मदत्त के काल में बोधिसत्त्व एक बड़े रईस के घर में पैदा होकर बड़ा हुआ। शादी करके, घरवाला भी बन गया। थोड़े दिनों बाद उनका एक लड़का पैदा हुआ। उसी दिन, उस घर के एक दासी का भी एक लड़का हुआ। उसका नाम कटाहक रखा गया।

रईस का लड़का और कटाहक बड़े होने लगे। जब रईस का लड़का पढ़ने जाता, तो कटाइक उसके पीछे पीछे, उसकी पुस्तकें एक थैले में लेकर जाता। जो कुछ रईस का लड़का सीखता, कटाहक भी सीख लेता। कटाहक अच्छा पढ़ा-लिखा अक्लमन्द समझा जाने लगा। शक्ल सूरत में, वह रईस के लड़के की तरह ही था। यह सब होते हुए भी, कटाहक को घर के नौकरों के साथ रहना पसन्द न था।

उसने सोचा कि अपनी विद्या और अक्लमन्दी के बल पर क्यों न मैं एक अच्छा-सा स्थान कहीं जाकर बना लूँ। तब उसे एक अच्छा उपाय भी सुझा।

काशी के कुछ दूर प्रत्यन्त देश में बोधिसत्व का एक लखपति मित्र रहा करता था। उसने उस लखपति को इस तरह चिट्ठी लिखी, जैसे उसके मालिक ने स्वयं लिखी हो-"मैं अपने लड़के को आपके पास भेज रहा हूँ। अच्छा होगा, अगर हम दोनों के घराने परस्पर और सम्बन्धित हो जायें। आप मेरे लड़के का अपनी लड़की से विवाह कर, उसको अपने यहाँ ही रख लीजिये। फुरसत मिलने पर मैं स्वयं आकर आपके दर्शन आवश्य करूँगा।"



इस तरह चिट्ठी लिखकर, कटाहक ने उस पर अपने मालिक की मुहर ठोक दी। मालिक के खजाने से इच्छानुसार पैसे लेकर, प्रत्यन्त देश में जाकर, लखपति के दर्शन कर उसको वह चिट्ठी दे दी। लखपति, चिट्ठी देखकर फूला न समाया। कटाहक के साथ उसने अपनी लड़की की शादी कर दी।

कटाहक के अब कितने ही नौकर थे। खाने-पीने और पहिनावे-पोशाक के बारे में उसको कितने ही देखभाल करनेवाले थे। मजे से दिन कट रहे थे। परन्तु वह हमेशा यूँ कोसता रहता-"ये प्रत्यन्त देश के लोग कतई गँवार हैं। वे जानते ही नहीं हैं कि सभ्यता किसे कहते हैं। यह क्या भोजन है! ये कपड़े भी क्या हैं?" हमेशा नौकरों को डाँटता-डपटता रहता और अपनी शान उनके सामने दिखाता।

इस बीच में बोधिसत्व को सन्देह हुआ कि कटाहक कहाँ था। उसका ठिकाना-पता किसी को न मालूम था। इसलिये उन्होंने उसको खोजने के लिये चारों ओर आदमी भेजे। उनमें से एक ने प्रत्यन्त देश में जाकर पता लगा लिया कि कटाहक एक लखपति की लड़की से यह कहकर कि वह फलाने काशी के रईस का लड़का है, विवाह कर आराम से रह रहा था।

यह पता लगते ही बोधिसत्व बहुत नाराज हुआ। वह स्वयं कटाहक को, प्रत्यन्त देश जाकर लाने के लिये रवाना हुआ। यह जानते ही कि वे आ रहे हैं, कटाहक घबरा गया। उसने भागने की सोची; पर भागने से उसकी हानि ही होती, लाभ कुछ न था। इससे अच्छा तो यही है कि मालिक से जाकर पूरा हाल सुना दे।

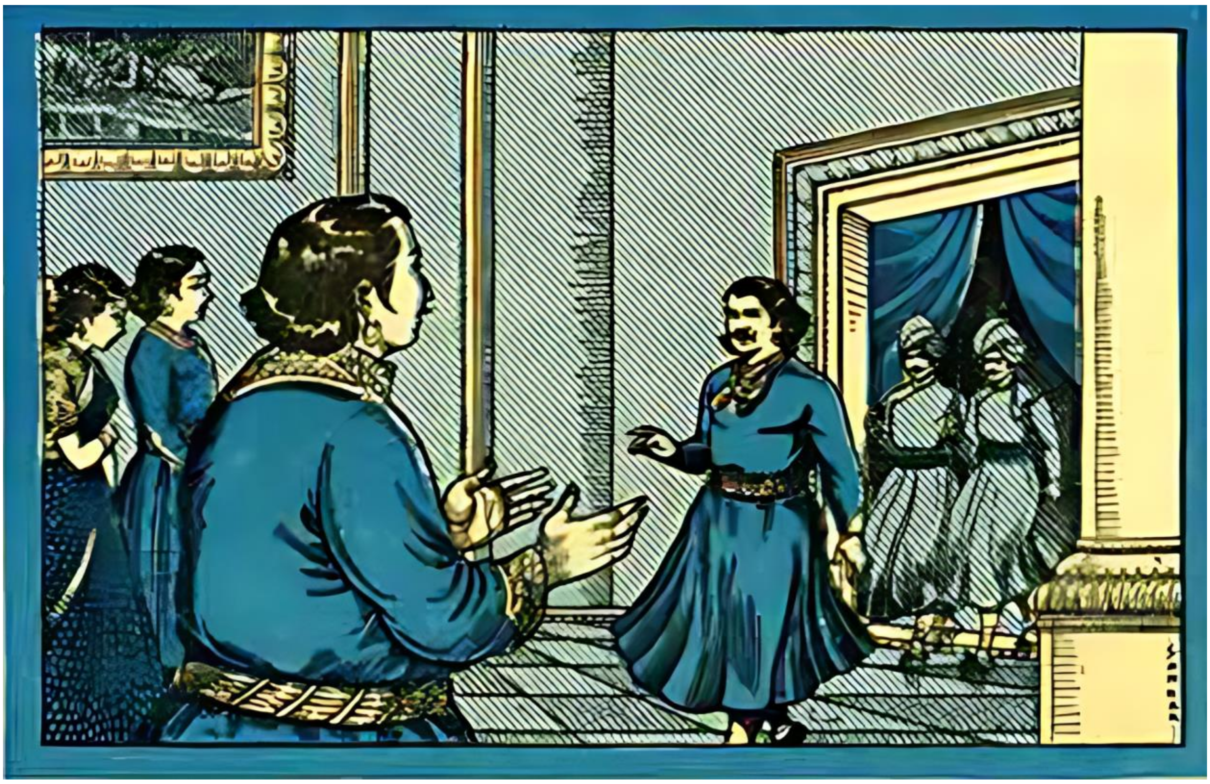
मालिक के वहाँ आकर, स्वयं सब कुछ पता लगने से पहले ही वह अपनी कहानी

उन्हें सुना, उनसे क्षमा माँगना चाहता था। हो सकता है कि मालिक के सामने नौकर की तरह रहने से, दूसरों को सन्देह हो जाये। इसलिये कटाहक ने अपने नौकरों से कहा- "मैं दूसरे लड़कों की तरह नहीं हूँ। मुझे अपने पिता के प्रति बहुत भक्ति है। जब मेरे पिता भोजन कर रहे होते हैं, तो पास खड़े होकर में पंखा झलता हूँ। मैं उनके लिए पीने का पानी आदि का भी प्रबन्द कर देता हूँ।"

बाद में कटाहक ने अपने ससुर के पास जाकर कहा "मेरे पिताजी आ रहे हैं। मैं जाकर उनको लिवा लाता हूँ।" लखपति उसका सुझाव मान गया।

कटाहक अपने मालिक से दूरी पर मिला और उनके पैरों पर पड़, उसने अपनी कहानी सुनाई। उनसे प्रार्थना की कि उसका कुछ बिगड़ने न दें। अभय भिक्षा माँगी। बोधिसत्व ने आश्वासन दिया कि वे उसका कुछ न बिगड़ने देंगे। कटाहक बोधिसत्व के साथ ही ससुर के घर गया।

लखपति बोधिसत्व को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और कहा- "आपके इच्छानुसार मैंने अपनी लड़की की शादी आपके



लड़के के साथ कर दी है।" बोधिसत्व ने ऐसा दिखाया, जैसे वह बहुत सन्तुष्ट हुआ हो। कटाहक से भी इस तरह बात की, जैसे वह सचमुच उनका लड़का हो। उसने लखपति की लड़की को बुलाकर पूछा भी-"क्यों बेटी! क्या मेरा लड़का तुम्हें ठीक तरह देख रहा है?"

"उनमें और तो कोई दोष नहीं है, पर जब वे भोजन के लिए बैठते हैं, तो उन्हें कोई पकवान भी पसन्द नहीं आता। चाहे कुछ भी बनाओ, नुक्ताचीनी करते ही रहते हैं। क्या करूँ, कुछ सूझ नहीं रहा है।" कटाहक की पत्नी ने कहा।

"हाँ! हाँ! वह खाने के बारे में बहुत नखरेबाजी करता है। इसलिए, जब वह भोजन करने बैठे और नाक भौं चढ़ाकर कुछ कहना शुरू करे तो यह श्लोक सुनाना। यह इलोक तुम्हें लिखकर दूँगा, तुम उसको कण्ठस्थ कर लेना।" बोधिसत्व ने उसको एक श्लोक लिखकर दिया।

बोधिसत्व काशी नगर वापिस चला गया। कटाहक और भी ढोङ्ग दिखावा करने लगा। बढ़-चढ़कर रहने लगा। जो कुछ भोजन में परोसा जाता, वह उसकी बुराई करता। तुरन्त उसकी पत्नी ने यह श्लोक पढ़ा।

बहुम्पिस विकत्थेय्य अब जनपदं गतो

अन्वागरस्वान दूसेय्य भुञ्ज भोगे कटाहक

(कटाहक स्वयं गालियाँ सुनकर दुसरी किसी जगह में जाकर अब दूसरों को गाली देता हुआ सब सुखों का अनुभव करेगा।)

इसका अर्थ उसकी पत्नी को न मालूम था। परन्तु कटाहक जान गया कि उसका मालिक नाम के साथ उसकी सारी पोल खोल गया है। इसलिए उसे जो कुछ परोसा जाता, चुपचाप खा लेता। उसके बाद वे दोनों बड़े सुख से रहने लगे।





[४]

[जब उसका महल कुण्डलिनी सैनिकों के हाथ आ गया तो मन्दरदेव अपने चार सैनिकों को लेकर नौकाओं में, समुद्र में निकल गया था। उनका कुछ और लोगों से युद्ध भी हुआ, जो उनकी तरह नाव में चले आ रहे थे। उनमें शिवदत्त भी था। मन्दरदेव ने उससे कुण्डलिनी द्वीप की परिस्थितियों के बारे में सोचा। बाद में....]

शिवदत्त की बातें सुनकर मन्दरदेव को बहुत आश्चर्य हुआ। उसे यह समझ में न आया कि इतना अक्लमन्द, अनुभवी, समझदार समरसेन राज्य-पालन में इतनी गल्तियाँ कैसे कर बैठा। वह न जाने, कहाँ कहाँ गया, न जाने उसने कितनी ही बहादुरी के काम कर, कितनी धन-सम्पदा एकत्रित की थी। पर ऐसा लगता है कि उन सब बातों से कुण्डलिनी देश के निवासियों की किसी प्रकार की भलाई नहीं हुई, बल्कि हानि ही अधिक हुई।

"शिवदत्त ! मैं तो यह सोच रहा था कि समरसेन द्वारा मांत्रिकों के द्वीप से लाई हुई, धन-धान्यों से भरी नाव के कारण आपके देश के वासी सुखी और सम्पन्न हैं।" मन्दरदेव ने कहा।

शिवदत्त ने अट्टहास करके कहा -"मन्दरदेव! वह धन-सम्पदा ही वस्तुतः



कुण्डलिनी द्वीप की अराजकता के कारण बनी। जब हम उस नाव में कुण्डलिनी द्वीप पहुँचे तो राजा चित्रसेन और जनता ने हमारा बड़ा स्वागत किया। एक महीने तक शहर में जलसे-जुजूस निकलते रहे। चित्रसेन ने सारे कर रद्द कर दिये। राज्य कर्मचारियों के वेतन दुगने कर दिये गये। लोगों को दान-दक्षिणाएँ दी गई।"

"राज्य में हरेक ने बड़ा सुख अनुभव किया होगा।" मन्दरदेव ने कहा।

"मन्दरदेव! ध्यान से सुनो, बताता हूँ।"

शिवदत्त ने कहना शुरू किया-"जब खजाना धन आदि से भर गया, तभी चित्रसेन शासन के बारे में लापरवाह हो गया। समरसेन ने सोचा-'इतना धन लाया हूँ। अब लोगों को किसी चीज़ की कमी न होगी।'

मैंने बताया था न कि राजा चित्रसेन ने राज्य के कर्मचारियों के वेतन दुगने कर दिये थे। अधिक पैसा मिलने पर वे विनोद में मस्त रहने लगे और जब लोगों पर कर देने की जिम्मेवारी न रही, तो वे खेती-बारी करने में उदासीन से हो गये। जितनी अनाज की जरूरत होती, उतना पैदा कर लेते, और बाकी ज़मीन खाली छोड़ देते और वे आलसी भी बन रहे थे।

इस तरह जो अनाज-गल्ला शहर जाता था, वह जाना बन्द हो गया। इसलिए शहर के लोग, झुण्ड झुण्ड बनाकर गाँवों में जाने लगे, और आनाज को दुगने-तिगुने दामों पर खरीदने लगे। किसान को अधिक रुपया मिलने पर यह न सूझा कि क्या खरीदें, इसलिए आनाज, शाक-सब्जी सभी चीज़ों के दाम बढ़ गये। देश में एक विचित्र रीति पैदा हो गई।

धीमे धीमे राज्य में अराजकता फैलने लगी। जो शहर के लोग अनाज के

लिए अधिक दाम दे न पाते थे, वे टोलियाँ बनाकर रात के समय गाँवों पर धावा बोलने लगे। यह देखा देख गाँववाले ने अनाज का दाम सोना जितना कर दिया। वे भी टोलियाँ बनाकर अपनी आत्म रक्षा के लिये सन्नद्ध हो गये।

भोग-विलास में मस्त चित्रसेन को बदलती परिस्थितियों के बारे में कुछ न मालूम था। सच कहा जाय तो न समरसेन को, न मुझे ही कुछ मालूम हुआ। हमें नहीं मालूम था कि देश के किस कोने में क्या हो रहा था। हम इस ख्याल में मस्त थे कि सम्पन्न देश में कोई भी गड़बड़ी नहीं हो सकती।

यद्यपि खजाने से लोगों को पैसा इस तरह दिया जा रहा था, जैसे वह पानी हो, फिर भी ऐसे लोगों की कमी न थी, जो पैसे के लिये मोहताज़ थे। क्योंकि अनाज और अन्य चीजों का दाम हजार गुना, दो हजार गुना बढ़ गया था। इसलिए चाहे कितना भी धन हो, काफ़ी न होता था। फिर जिन विनोद, खेल-खेलवाड़ों की व्यवस्था की थी, उनके बारे में तो कहना ही क्या? बड़ी अजीब व्यवस्था थी। सारा वातावरण





बदल गया था। राजा और जनता अत्यन्त बेफिक्र हो गये थे।

हर रोज, राजमहल में, कोई न कोई मनोरञ्जन का कार्यक्रम रहता। अब उन मनोरञ्जनों के बारे में सोचने पर शर्म आती है। पर तब हमने ख्याल भी न किया, उसक क्या दुष्परिणाम होगा।

जङ्गल में से एक क्रूर शेर को पकड़कर, लोहे के सीखञ्चों से घिरे मैदान में छोड़ दिया जाता था। जो कोई उसको सिर्फ भाला लेकर मार देता, उसको शेर के वजन के बराबर सोना दिया जाता। धन के लालच से शेर से लड़ने के लिए कई साहसी नवयुवक आते और जिनका भाग्य साथ देता, वे शेर के साथ लड़कर खूब धन कमा कर चले जाते।

होते होते ये सिंह-युद्ध बहुत ही भयङ्कर और असभ्य हो गये। कभी हाथी और शेर का युद्ध होता; कमी हाथी हाथी का कभी कुछ तो कभी कुछ और। मैंने समरसेन से इस क्रूरता के बारे में कहकर भी देखा। पर उसे नरवाहन मिश्र की बात पर अधिक विश्वास था, जो उसके साथ मान्त्रिकों के द्वीप में घूमा-फिरा था।



'खजाने में धन की कोई कमी नहीं है। राजा बूढ़ा है। यह भी उसकी जिम्मेदारी है कि देश के लोगों को बहादुर और साहसी बनाये। उस हालत में अगर राजा इस तरह के मनोरञ्जनों की व्यवस्था करता है तो इसमें गलती क्या है?" समरसेन अक्सर कहा करता।

जब राजा और राज कर्मचारी मनोरञ्जनों में मस्त थे, तो गाँवों में विचित्र विचित्र परिवर्तन होने लगे। हर ताकतवर आदमी, जिसकी थोड़ी बहुत धाक थी, जिसकी लाठी उसकी भैंस थी। स्वयं एक छोटा मोटा



राजा हो गया। लोग कुछ अनुयाइयों को इकट्ठा करते, और पासवाले गाँव पर धावा बोल देते, और उन्हें अपने आधीन कर लेते। तब की यह थी हालत।

इस प्रकार, एक ही राज्य में कई छोटे छोटे राज्य बन गये। राजा का और प्रजा का सम्बन्ध भी शिथिल हो गया। न राजा को इस बारे में कुछ मालूम था, न उसके कर्मचारियों को ही। मैं जानता था कि इसका बुरा नतीजा होगा, पर मेरी बात पर किसी ने ध्यान न दिया। देश में व्यापार खेती बगैरह सब चौपट हो गई। डाकू डकैतो के गिरोह शहर और गाँवों को, मौके बेमौके लूटने लगे। धीमे-धीमे यह नौबत आई कि चित्रसेन का शासन उसके राजमहल तक ही सीमित रह गया। देश में उसको पूछने वाला कोई न था। जहाँ कहीं भी देखो, नये नये राजा-महाराजा दिखाई देने लगे। न कोई कानून था, न शासन ही।

एक दिन शाम को जब चित्रसेन अपने मनोरञ्जन में मस्त था, एक दूत ने आकर उसके हाथ में एक चिट्ठी दी। राजा ने समरसेन को, जो पास में बैठा था, चिट्ठी पढ़ने के लिए दी। समरसेन उसे पढ़ते ही तिलमिलाने लगा। उसको काटो तो खून नहीं। मैं झट जान गया कि हो, न हो कोई ख़तरा आ पड़ा है।

'महाराज! मैं चाहता हूँ कि मनोरञ्जन का कार्यक्रम समाप्त कर आप राज-महल में आयें। आपसे राज्य सम्बन्धी कुछ बात करनी है। बहुत जरूरी बात है।' समरसेन ने कहा। चित्रसेन ने लाचारी से मेरी और समरसेन की ओर देखा। फिर वहाँ से उठकर वह चल दिया। मैं जा ही रहा था कि समरसेन ने मुझे रोककर कहा -'शिवदत्त! तुम भी आओ। हम तीनों

चलें।' समरसेन ने दूत की लाई हुई चिट्ठी को हमें देते हुये कहा-'हम अब तक आँखें मींचे बैठे थे। इस कुण्डलिनी द्वीप में बिना हमारे ज्ञान के, कई राजा-महाराजा बन बैठे हैं। उन लोगों ने हमें ही चुनौती दी है। कहते हैं कि वे असमर्थ राजा को हटाना चाहते हैं। राज-महल और किला वे अपने वश में करना चाहते हैं और राजा उनके सामने झुक जाय।'



तब भी चित्रसेन की मस्ती दूर न हुई; वह अपने नशे में ही रहा। बड़ी बड़ी आँखों से इस तरह समरसेन की तरफ उसने देखा, जैसे अभी सोकर उठा हो। पैर ठोकते उसने हुए कहा-'समरसेन! मालूम होता है, राज्य की परिस्थिति बहुत गिर गई है। इन घमण्ड लोगों को दबाना ही होगा। दूसरों को भी सबक सिखाना होगा। इसलिये उनके सरदारों को पकड़कर उनकी बोटी बोटी कटवा दो। एक भी न बचने पाये।'

'अच्छा महाराज फिर मिलूँगा।' कह, समरसेन कमरे में से बाहर चला गया। मैं भी बिना कुछ कहे, उसके पीछे थोड़ी दूर तक चला। तब समरसेन ने यकायक एक जगह रुककर मुझ से यों कहा-'शिवदत्त! तुम्हारी इस बारे में क्या राय है?' सहसा इस तरह पूछने से मैं हैरान रह गया। मुझे सिवाय इसके कि देश में अराजकता फैली हुई थी, और कई लोग अपनी अपनी धाँधली चला रहे थे, कुछ न मालूम था। जब मुझे पता लगा कि महाराज से लोहा लेने के लिए ही कुछ लोग तैयार हो गये हैं, तो मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही। परन्तु में इतना ज़रूर ताड़ गया कि देश की परिस्थितियों के बारे में जितना मैं जानता था, उतना समरसेन नहीं जानता था। वह तो बेखबर था।

'मुझे लगता है कि शत्रु बलशाली हैं। अगर वे बलशाली न होते तो नगर पर वे यकायक हमला न कर देते। अगर अब वे चुनैती देकर आ रहे हैं, तो आप आसानी से अनुमान कर सकते हैं।' मैने कहा। समरसेन दो-तीन मिनिट तक न बोला। फिर सिर हिलाते हुए उसने कहा-'शिवदत्त! जो तुम कह रहे हो, उसमें ज़रूर सच्चाई है। फिर भी हमारे पास सुशिक्षित सेना है, अनुभवी, समर्थ, वफादार सरदार हमारे हैं। इन देश-द्रोहियों का नामो-निशान मिटाने के लिए अधिक समय न लगेगा।' समरसेन का, 'बफादार सरदार' कहने का क्या मतलब था, मैं जान गया। वे वही थे, जो उसके साथ मान्त्रिक द्वीप गये थे, और जिन्होंने वहाँ हर तरह की मुसीबतें झेली थीं। उनमें मुख्य नरवाहन मिश्र ही था।

'खैर, इन बागियों को जितनी जल्दी क़ाबू में लाया जाय, उतना ही अच्छा। सेना को तैयार रहने के लिए कहो। आपके नेतृत्व में मैं मुश्किल से मुश्किल काम भी कर सकता हूँ।' मैने कहा।

समरसेन ने मुझ पर आश्चर्य करते हुए कहा-'इस छोटे से कार्य के लिए तुम्हारा या मेरा सरदार बनकर जाना हास्यास्पद है। वफादार, बहादुर नरवाहन मिश्र को यह काम सौंपने का मेरा विचार है।'

नरवाहन मिश्र के बारे में मैंने तभी कुछ बातें सुन रखी थी। उसकी हरकतों के बारे में मुझे बहुत दिनों से सन्देह हो रहा था। परन्तु इस हालत में, उसके बारे में समरसेन से कहना, मुझे अच्छा न लगा। अब भी मैं सोच रहा हूँ कि बताया जाय कि नहीं। (अभी और है)





मन्दपाल सानुमन्त देश का राजा था। बहुत दिनों बाद उसकी एक लड़की हुई। उसका नाम माँ-बाप ने मालती रखा। जब वह लड़की पैदा हुयी तो उन्हीं दिनों, वहाँ एक दूर देश का ज्योतिषी आया हुआ था। उस ज्योतिषी ने जन्म का समय पता लगाकर उसकी जन्म-पत्री लिखी। कुछ दिनों बाद वह कहीं और चला गया।

जब मालती सोलह वर्ष की हो गई तो उसका विवाह करने से पहले राजा ने उसकी जन्म-पत्री जाननी चाही। जन्मपत्री की भाषा को ठीक तरह समझने वाला उस समय उसे कोई न मिला। एक पण्डित ने बहुत माथापच्ची के बाद, जन्म-पत्री पढ़कर बताया-"महाराज! इस जन्म पत्री में स्पष्ट लिखा है कि राजकुमारी के दो विवाह होंगे। पति विवाह के दिन ही दिवङ्गत हो जायेगा। यह भी लिखा है कि इसका पति चक्रवर्ती होगा। मुझे ठीक तरह पता नहीं लग रहा है। शायद यह हो कि पहले पति के मर जाने के बाद दूसरा पति चक्रवर्ती हो।"

मन्दपाल ने पहले ही अपनी लड़की का इन्द्रदत्त से विवाह निश्चित कर रखा था। अगर भाग्य ने साथ दिया तो इन्द्रदत्त चक्रवर्ती हो सकता था। परन्तु लड़की की जन्मपत्री में दो विवाह थे। इसलिए उसने इन्द्रदत्त से शादी करने से पहले मालती की किसी और से शादी करने की ठानी। उसने अपने मन्त्रियों को भी यही बताया।

उन दिनों सानुमन्त शहर में कहीं से तीन पागल आये हुए थे। एक कहा करता

कुमारी उषा भटनागर



"सब अजीब है।" दुमरा" दैवायतं।" चिलाता। तीसरा कहता-" कोई किसी का नहीं है।" ये पागल इसके सिवाय कुछ न कहते। दिन भर शहर में यह ही बकते फिरते। कोई भोजन देता तो खा लेते। शाम होते होते मन्दिर में जाकर, मण्डप में सो जाते।

मन्त्रियों ने राजा को यह बात सुनायी। उनमें से एक ने कहा- "महाराज! आज हम राजकुमारी को दुल्हन बनाकर मन्दिर ले जाय, जैसे पूजा करने के लिए जा रहे हो, और वहाँ ईश्वर के समक्ष, उनमें से एक पागल के साथ, चुपचाप राजकुमारी का विवाह कर दें। बाद में असली विवाह तो होगा ही। इस तरह करने से जन्मपत्री में लिखा हुआ दोष हट जायगा, और सुख से विवाह भी हो जायगा।"

जब सारा शहर सो रहा था तो मालती को दुल्हन बनाकर वे मन्दिर में ले गये। "मण्डप में सोये हुए किसी एक पागल को उठा लाओ।" मन्त्री ने सैनिकों से कहा। सैनिक पागलों में सब से छोटे पागल को उठाकर ले आये। वह "दैवायत्तं" कहनेवाला पागल ही था।

पुरोहित ने जल्दी जल्दी दो-चार मन्त्र पढ़े और मालती की "देयायत्तं" कहनेवाले पागल के साथ शादी कर दी थी। तब मालती को दरबारी बारिस ले गये। पागल फिर जाकर मण्डप में सो गया।

अगले दिन ही असली विवाह था। बड़े धूमधाम से विवाह हुआ। परन्तु न जाने क्यों मालती को यह विवाह नकली लग रहा था और उसको मन्दिर में किया गया विवाह ही असली मालूम हो रहा था। उस दिन दरबार में जो गुलछर्रें उड़े, उनकी हद ही न थी। दिन भर दावतें होती रहीं,

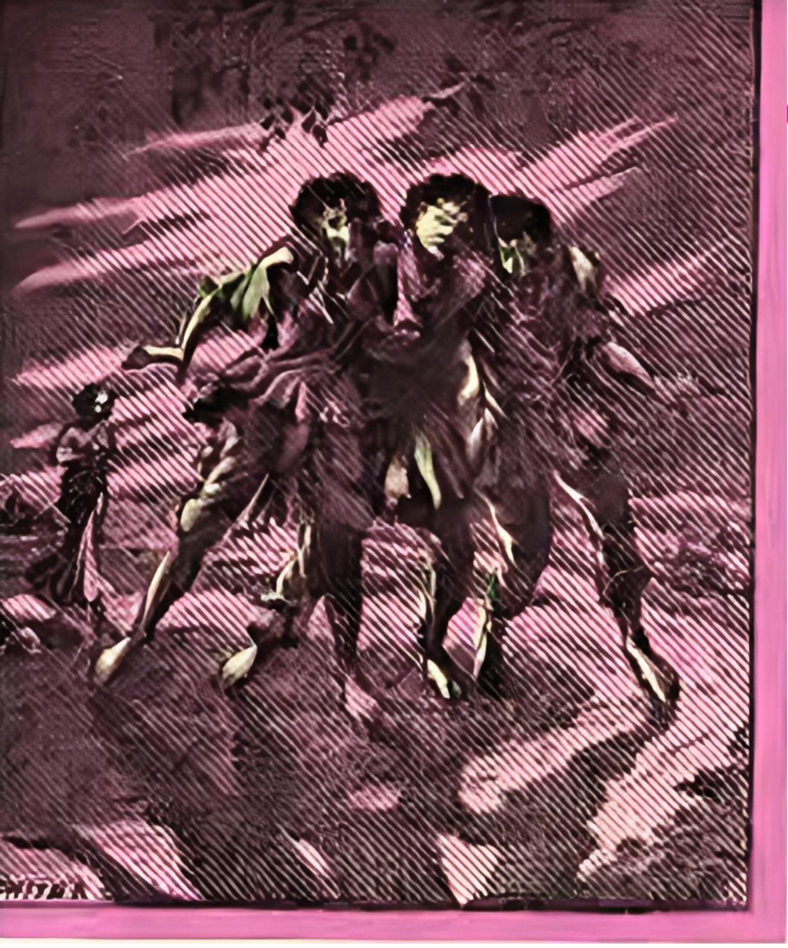
नाच-गाना चलता रहा। दावन खाते खाते दूल्हा यह कहकर चला गया कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है। थोड़ी देर बाद ही उसको मूर्छा सी आई और उसी मूर्छा के कारण वह मर भी गया। जहाँ शादी की खुशियाँ मनाई जा रही थीं, वहाँ मातम मनाया जाने लगा।

यह देख मन्दपाल भी मूर्छित सा हो गया। मन्त्री ने विवाह के लिए निमन्त्रित एक दाक्षिणात्य पण्डित के पास जाकर मालती की जन्मपत्री दिखाई। पण्डित ने जन्म-पत्री पढ़कर कहा-"इस लड़की का दूसरा पति मर जायेगा, और पहला चक्रवर्ती बनेगा।

मन्त्री घबराया हुआ भागा भागा राजा के पास गया, और उसने उनसे यह बात कही। "मेरे पास ज्योतिषियों और जन्म-पत्रियों के बारे में कुछ न कहो। ये ज्योतिषी भूत तो ठीक बताते है, पर जब भविष्य के बारे में बताना होता है तो बगले झाँकने लगते हैं। यह पागल क्या चक्रवर्ती बनेगा?" राजा ने गुस्से में कहा।

मन्त्री ने यह जानने के लिये कि वे पागल हैं या चले गये हैं, मन्दिर की ओर





आदमी दौड़ाये। उन लोगों ने आकर बताया कि वहाँ कोई न था। अन्तःपुर में मालती भी न दिखाई दी। किसी को न मालूम था कि वह राजमहल से कब गई और कहाँ गई।

यह पता लगते ही कि इन्द्रदत्त की मौत हो गई है, मालती को वैराग्य-सा हो गया। उसने अपने रेशमी कड़े उतार दिये, और गेरुआ पहिन लिया और अन्धेरे में ही वह मन्दिर की ओर चली गई। पागल कहीं जाने की तैयारी कर रहे थे। मालती भी उनके पीछे पीछे ही चल दी।

पागल, जङ्गल, गाँव, कस्बों में से होते होते बहुत दिनों बाद जयन्त नगर में पहुँचे। मालती भी उन्हीं के पीछे पीछे चलती जाती। जब वह रुकते, वह भी रुकती; जहाँ उनको खाना मिलता, वह भी खाना पाती।

जयन्त नगर में बड़ा शोर-शराबा हो रहा था। उस नगर का राजा विजयवर्धन था। उसका एक ही एक लड़का था, और वह भी बैरागी हो गया था। उसने विवाह न करना चाहा था। अब शहर में यह खबर आई थी कि वह कहीं मर गया था। इसलिए अपना उत्तराधिकारी चुनने के लिए, वह एक हाथी को सजा-धजा कर शहर में छोड़ रहा था। हाथी जिस पर सूँड़ उठायेगा, वही उत्तराधिकारी समझा जायगा। यह सब मालती ने लोगों को कहते-सुनते जान लिया।

गलियों में भीड़ लगी हुई थी। हर कोई सोच रहा था कि हाथी उसी पर सूँड़ झुकायेगा। हाथी के आने से पहले सैनिकों ने लोगों का चलना-फिरना बन्द कर दिया। उनको एक किनारे खड़ा कर दिया। पागलों के साथ मालती भी खड़ी हो गई। इस बीच में, लोगों में हलचल शुरू हो गई। हाथी उसी गली में आ रहा था। ज्यों

ज्यों वह पास आता जाता था, लोगों में शोर भी बढ़ता जाता था। हाथी सीधा उस जगह आया, जहाँ पागल खड़े थे। उसने "देवायत्तं" कहनेवाले पागल पर सूँड़ झुकाई। लोग काठ की तरह स्वव्य खड़े हो गये।

हाथी पर चढ़े मन्त्री ने नीचे उतरकर उस पागल की ओर गौर से देखा। "महाराज, आप ही हैं। क्या भाग्य है मैं भी न पहिचान सका, पर बेजवान इस हाथी ने आपको पहचान लिया है।" कहते कहते मन्त्री ने नमस्कार किया। "देवायत्तं" कहकर वह पागल हँस दिया था।

सचमुच वह पागल न था। वह वस्तुतः उस देश का युबराज भूपालदेव ही था। कुछ दिनों पहले उसमें और मन्त्री में कुछ अनबन हो गई थी। मन्त्री ने उससे विवाह करने के लिए कहा, उसने करने से इनकार कर दिया। "अगर भाग्य में लिखा हो तो क्या आप टाल सकते हैं?" मन्त्री ने कहा।

"सब कुछ मनुष्य के अधीन है; देव या भगवान के अधीन कुछ नहीं है।" युवराज ने कहा था।

एक दिन जयन्त नगर में कोई योगी आया। वह बहुत प्रतिभाशाली लगता था,



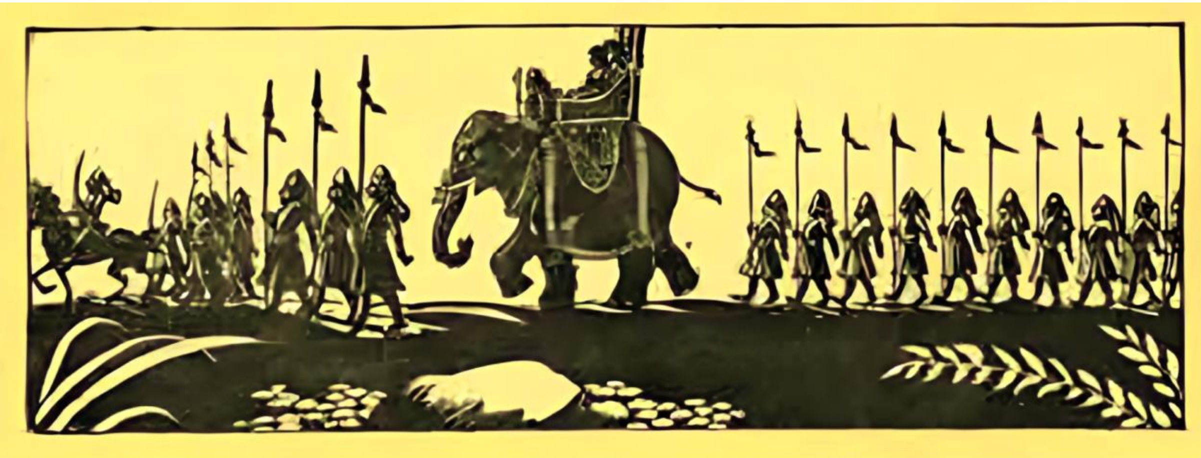
इसलिए मन्त्री उसको दरबार में ले गया। योगी और युवराज में बहुत देर तक बाद विवाद होता रहा। योगी चला गया। और उसी दिन से युवराज भी पागल की तरह "दैवायत्तं" कहता कहता, देश विदेश घूमने लगा। कुछ दिनों तक उसका ठिकाना भी किसी को न मालूम था।

जब भूपालदेव "दैवायतं" कहता कहता इधर उधर फिर रहा था, तो उसको दो पागल और मिले। उनमें से एक जो यह कहता था-"सब अजीब है।" वह एक उच्च कुल का ब्राह्मण था। पत्नी को व्यभिचार करता देख, वह पागल हो गया था। दूसरा किसी बनिया लखपति का लड़का था। उसने देखा कि उसके सब सगे-सम्बन्धी उसकी मौत की इन्तज़ारी कर रहे थे, ताकि वे उसका धन हड़प सकें। वह भी पागल हो गया और "कोई किसी का नहीं है" कहता कहता इधर उधर फिरने लगा। ये तीनों अब तक एक ही साथ थे।

"मन्त्री, जो तुमने कहा था, वही हुआ। भगवान के अधीन होने के कारण मेरा विवाह भी हो गया है। अगर आपको मेरी बात पर विश्वास न हो तो हमारे साथ आनेवाली इस योगिनी से पूछ लीजिये।" भूपालदेव ने कहा।

तब मालती को माम हुआ कि "दैवायतं" कहनेवाला ही उसका पति था। मन्त्री ने उस को नमस्कार किया, और युवराज और युवरानी को हाथी पर चढ़ाकर राज महल में ले गया।

मालती न केवल चक्रवर्ती की पत्नी ही बनी, अपितु वह अपने पति के साथ सुख से रहकर, कई बार बच्चों की माँ भी हुई।





कुछ का कुछ

विक्रमार्क बहुत ही हठी था। प्रश्न का उत्तर देने के कारण उसका मौन बन भङ्ग हो गया था, और शव के साथ वेताल फिर पेड़ पर जा बैठा था, यह विक्रमार्क जान गया था। वह फिर वापिस चला। पेड़ पर से शव को उतारा, और कन्धे पर डाल, वह शमशान की ओर जाने लगा।

"राजा! तुम बहुत ज्ञानी हो। तुम से पूछकर मैं अपना एक और सन्देह दूर करना चाहता हूँ। पहले यह कहानी सुनो।" कहते हुये बेताल ने यह कहानी सुनाई:-

शोभावती नगर में काली का एक मन्दिर है। हर साल आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी के दिन वहाँ एक बड़ा मेला लगता है। दूर दूर से लोग वहाँ आते हैं, तालाब में स्नान कर, काली माई का दर्शन कर जाते हैं।



एक साल ब्रह्मस्थल नामक गाँव से धवल नाम का धोबी काली माई का दर्शन करने आया। उसने तालाब में नहाते हुये मदन सुन्दरी नाम की एक धोबी कन्या को देखा। यह भी काली दर्शन के लिये आई हुयी थी। उसने उसके नाम गाँव, पिता का नाम आदि के बारे में भी पता लगाया। उसने सोचा कि जब तक वह उस कन्या से विवाह नहीं कर लेगा, तब तक भोजन का एक कौर भी नहीं लेगा।

मेले के बाद धवल को दिन प्रति दिन कमजोर होता देख, उसके पिता ने उसकी कमजोरी का कारण पूछा। धवल ने मदन सुन्दरी के बारे में सब कुछ कह सुनाया।

"अरे बेटा! इस छोटी-सी बात के लिये ही तुम खाना-पीना छोड़ बैठे थे? उसका पिता मेरा मित्र ही है। अभी जाकर विवाह निश्चित किये देता हूँ। तुम उठो, भोजन करो।" उसके पिता ने कहा।

शुभ मुहूर्त में धवल और मदन सुन्दरी का विवाह हो गया। धवल पत्नी को घर लाकर आराम से रहने लगा।

इस बीच में धवल के साले ने उसके घर आकर कहा-"हम अपने घर में गौरी व्रत कर रहे है। तुम्हें और बहन को ले जाने के लिये आया हूँ।"

अगले दिन ही धवल, पत्नी और साले के साथ, ससुराल के लिये निकल पड़ा। रास्ते मैं शोभावती नगर पड़ता था। धवल को माई के दर्शन करने की इच्छा हुई। जब उसने साले और पत्नी को बुलाया तो उन्होंने खाली हाथ माई को देखना अच्छा न समझा, घवल अकेला ही मन्दिर में गया।

मन्दिर में, काली माई को देखते ही धवल भक्ति के कारण मूर्छित-सा हो गया। अठारह हाथोंवाली काली माई, महिषासुर

को पैरों तले रौंदती हुई एक विजेता के समान उसको दिखाई दी। काली माई की मूर्ति के पास ही एक गण्डासा था।

"इस देवी को हर कोई बलि देकर पुण्य कमाता है, मैं अपने को ही बलि देकर मोक्ष पाऊँगा।" यह सोच धवल ने गण्डासा उठाया और अपना सिर स्वयं काटकर मूर्ति के सामने रख दिया।

पति को आता न देख पत्नी ने भाई को भेजा। जब वह मन्दिर में गया तो उसने देखा कि बहनोई ने अपने हाथों मूर्ति के सामने अपने को बलि कर दिया था। उस में एक प्रकार का भक्ति-आवेश पैदा हुआ। उसने भी गण्डासे से अपना गला काटकर, अपने बहनोई के सिर के पास ही रख दिया।

मदन सुन्दरी ने उस दोनों की बहुत प्रतीक्षा की। जब वे न आये, तो वह स्वयं हैरान होकर मन्दिर में गई। वहाँ अपने भाई और पति का सिर पड़ा देखकर, उसने दुःखित हो कहा-"माई! क्या तूने मेरे भाई और पति को एक साथ ही बलि ले लिया है? अब मेरे जीने से भी क्या फायदा? मे तेरे सामने ही फाँसी लगाकर



मर जाऊँगी।" उसने आत्महत्या करने का प्रयत्न किया। तब उसको देवी के मुख से ये शब्द सुनाई दिये-

"अरी पगली! आत्महत्या न कर। मैने न तेर पति की बलि माँगी थी, न तेरे भाई की ही। उन्होंने अपनी भक्ति में अपने आप को बलि दे दिया है। उनके धड़ के पास सिर रख। मैं उनको अभी जिला देती हूँ।"

माई के शब्द सुनते ही मदन सुन्दरी बहुत ही प्रसन्न हुई। उसकी आँखों से आँसू झरने लगे। उसने आँसू पोछते पोछते मन्दिर के अन्धेरे में सिरों को धड़ के पास रखा। वे तुरन्त जीबित हो उठे। पर एक ग़लती हो गई थी। मदन सुन्दरी ने अपने पति का सिर भाई के घड़ पर रख दिया था और भाई का सिर पति के भड़ पर। वे उसी तरह जीवित हो गये थे।"

यह कहानी सुना बेताल ने पूछा- "राजा मेरा सन्देह यह है कि मदन सुन्दरी का सचमुच पति कौन है और भाई कौन है? अगर तुमने इसका उत्तर जनते हुये न दिया, तो तुम्हारा सिर फोड़ दूँगा।"

"इसमें किसी सन्देह की गुञ्जाइश ही नहीं है। सारे शरीर में सिर ही प्रधान है। इसलिये पति के सिरवाला ही पति है। भाई के सिरवाला भाई। विक्रमार्क ने उत्तर दिया।

राजा का मौन इस तरह भङ्ग होते ही- वेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा। विक्रमार्क फिर वापिस गया। पेड़ पर से शव को उतारकर कन्धे पर डाल फिर एक बार श्मशान की ओर चल पड़ा।

"राजा! तुम्हरा परिश्रम जरूर सराहनीय है। मुझे एक और सन्देह हो रहा था। अब मेरा सन्देह हट गया।"





मालव देश में सुदर्शन नाम का एक नवयुवक रहा करता था। शक्ल सूरत में वह कामदेव को मात करता था, पर वह बहुत ग़रीब था। उसने अध्ययन में सारा बचपन काशी में काट दिया था। शिक्षा की पूर्ति के बाद वह शास्त्र की पोथियाँ लिये घर वापिस लौट रहा था।

पड़ाव करता करता, एक दिन सुदर्शन एक छोटे से राज्य में पहुँचा। उस राज्य का नाम पुरन्दर था। शहर में पहुँचते पहुँचते काफी अन्धेरा हो गया था। अन्धेरे में उसने इधर उधर भटकना न चाहा। सीधे राजा के पास जाकर उसने कहा-"मैं परदेशी हूँ। अतिथि हूँ। भोजन और सोने की जगह दीजिये। सवेरा होते ही में अपने रास्ते आप चला जाऊँगा।"

पुरन्दर राजा उसके सौंदर्य और तौर-तरीके को देखकर मान गया। सुदर्शन के जाने के बाद, रानी ने राजा से कहा-"उस लड़के ने कपड़े तो मामूली ही पहन रखे हैं, पर लगता है, जैसे वेष बदलकर कोई चक्रवर्ती का लड़का आया हो। आप जरा उसके बारे में सोचिये, मौका लगा तो लड़की की शादी उससे कर देंगे।

"जो वेष बदलकर घूम रहा है, क्या वह हमारे पूछने पर सच कहेगा? मन्त्री से पूछ-ताछ कर कुछ करेंगे।" राजा ने कहा। मन्त्री ने सब सुनकर कहा-"लड़का राजा है कि नहीं, आसानी से जाना जा सकता है। परन्तु एक रात में पता नहीं लगेगा। इसलिये कम से कम उसे दो-तीन दिन तक यहाँ ठहराइये।"

श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल



भोजन करते समय राजा ने सुदर्शन से कहा-"तुमने कहा था कि कल सवेरे ही तुम चले जाओगे। परन्तु हम तुम्हें यों जाने नहीं देंगे। कल हमारी इन्दुमति का जन्म दिन है। कल यहीं रहो।" "जैसी आपकी इच्छा।" सुदर्शन ने कहा।

इस बीच में, मन्त्री ने एक कमरे में, सुदर्शन के लिए एक मामूली सा विस्तर चिछवा दिया। एक सिपाही को बुलाकर उसने कहा-"तुम यहाँ कमरे के बाहर रात भर पहरा दो, और यह देखते रहो कि अतिथि आराम से सोता है कि नहीं।"

सुदर्शन भोजन कर अपने सोने के कमरे में गया। दरवाज़े की चटखनी लगाकर उसने कुरता उतारा। तुरन्त कुरते की जेब से दो तीन मुठ्ठी चने, बिस्तरे पर, इधर उधर फर्श पर गिर गये। वह गरीब था, समझदार भी। कहीं ऐसा न हो कि कभी असमय में ही व्रत करना पड़ जाये, उसने रास्ते में चने तोड़ लिये थे, और छिलके निकालकर जेब में रख लिए थे। पर वह उनके बारे में कतई मूल गया था।

चनों के इधर उधर बिखर जाने से सुदर्शन के सामने एक समस्या पैदा हो गई। राजा उसका इस प्रकार आतिथ्य कर रहा था, जैसे वह बड़ा आदमी हो। नौकरो ने यहाँ चने बिखरे देख अगर राजा तक सबर भिजवा दी, तो उसको नीचा देखना होगा। इसलिए सुदर्शन एक एक करके चने उठाने लगा, उसने बिस्तर भी झाड़ा। चने चुनते चुनते आधी रात हो गई।

चनों को जेब में रखना अक्लमन्दी का काम न था। इसलिए यद्यपि उसको भूख न थी, वह चने खाने लगा। जब वह सोया तो सबेरा होने को था। अगले दिन सवेरे मन्त्री ने सिपाही को बुलाकर

पूछा-"क्यों! क्या वे रात को ठीक तरह सोये थे ? तुमने क्या देखा?"

"हुजूर! रात भर वे सोये ही नहीं। मैं भी न सोया। वे इधर उधर घूमते ही रहे। मैंने उनको बिस्तर झाड़ते भी सुना। मैं तीसरे पहर कहीं जाकर सो सका। वे कब सोये, मैं नहीं जानता हूँ।" पहरेवाले ने कहा।

मन्त्री ने राजा के पास जाकर कहा- "महाराज! हमारे अतिथि बहुत ही नाजुक हैं। मैने रात में जो उन के लिए बिस्तरा लगवाया था, वे मामूली आदमी होते तो आराम से सो गये होते। उस पर कोई चक्रवर्ती के लड़के ही सो सकते हैं।"

चनों से उसने पेट भर लिया था, इसलिए अगले दिन दावत में सुदर्शन कुछ भी न खा सका। उसने पकवान छुये तक नहीं। यह देख राजा और रानी को मन्त्री की बात पर और भी विश्वास हो गया।

अगले दिन मन्त्री ने सुदर्शन के लिए शानदार, गद्देदार बिस्तरा लगवाया। पूरी रात वह सोया नहीं था। अगर वह पत्थर पर भी सो जाता, तो उसे नींद आ जाती। गद्देदार बिस्तरे पर लेटते ही वह नाक बजाने लगा।





मन्त्री ने राजा, रानी से कहा-"अब सन्देह की गुञ्जईश नहीं है। अब डर तो मुझे इस बात का है कि इतना बड़ा व्यक्ति हमारी लड़की से विवाह करने को तैयार होगा?"

"जो आदमी मामूली आदमी का वेष धारण कर यात्रा पर निकला है, हमारी लड़की से क्यों नहीं विवाह करेगा? पूछकर देखिये।" रानी ने कहा।

इन्दुमति को साथ ले जाकर मन्त्री ने सुदर्शन से विवाह के बारे में कहा। पहले तो सुदर्शन घबराया, पर बाद में मान गया।

जल्दी ही, ग़रीब ब्रह्मचारी सुदर्शन का, राजकुमारी इन्दुमति से विवाह हुआ।

एक साल तक सुदर्शन ने समस्त बिलासों में रमा रहा। बाद में उसके कष्ट शुरू हुए। एक दिन इन्दुमति ने अपने पति से कहा-"क्यों जी! हम कब तक यहाँ यो बैठे रहेंगे? चलिए, हम अपने राज्य चले।"

सुदर्शन ने चकित होकर पूछा-"हमारा राज्य....?"

"हाँ! आप महाराजा हैं, यह मुझे विवाह से पहिले ही पता लग गया था। कब तक चलेगा यह नाटक?" इन्दुमति ने यह कहते हुये, मन्त्री की परीक्षा के बारे में भी बनाया। वह सुनते सुनते सुदर्शन को ऐसा लगा, जैसे उसकी बुद्धि ही मारी गई हो। वह सन्न रह गया था।

परन्तु पत्नी को कोई राज्य दिखाने के सिवाय उसके सामने कोई रास्ता न था। उससे सच कहा जा सकता था, पर सच कहने से उसने सोचा कि उसका मन दुखेगा। पत्नी को किसी प्रकार की तकलीफ देना उसको न भाता था।

"खैर, में पर्यटन प्रारम्भ करता हूँ। बाद में, उसे अपने आप ही सच मालूम

हो जायगा। जो होगा, सो होगा।" सुदर्शन ने सोचा। ससुर से विदा लेकर, वह पत्नी के साथ निकल पड़ा।

हफ़्ता बीते, महीने बीते। एक शहर से दूसरे शहर को, एक देश से दूसरे देश को पति-पत्नी चलते जाते थे। इन्दुमति इस ख़याल में थी कि पति उसको अपने देश ले जा रहा था। इसके सिवाय वह कुछ न जानती थी। वह उसके साथ पैदल चलती, पेड़ो की साया में विश्राम करती, सब तरह की मुसीबतें झेलती। पर उसने भूलकर भी एक बार अपने पति से न पूछा-"हम किधर जा रहे हैं? कहाँ जा रहे हैं?"

कितनी ही बार पत्नी को धोखा देकर, सुदर्शन ने भाग जाने की सोची। परन्तु वह पत्नी की, जो उसके साथ हर मुसीबत झेल रही थी, जो उसी के सहारे जी रही थी, वह छोड़कर न जा सका। उसको लगा कि उसकी पत्नी, पहले की अपेक्षा कई गुना अधिक समीप थी।

छः महीने बाद पति-पत्री कलिङ्ग देश पहुँचे। व्यापारियों के पास इन्दु के कुछ कीमती गहने बेच कर उन दोनों ने एक बुढ़िया के यहाँ ठिकाना किया।



उन दोनों को देखने ही बुढ़िया को सन्देह हुआ। इन्दुमति तो राजकुमारी की तरह दीख ही रही थी। परन्तु बुढ़िया की नजर सुदर्शन पर थी। क्योंकि पन्द्रह साल पहले, कलिङ्ग राजा के लड़के को चोर उठा ले गये थे। अगर वह लड़का जीवित रहता तो उसकी उम्र भी सुदर्शन की उम्र जितनी होती। बुढ़िया को शक हो रहा था कि कहीं वह लड़का सुदर्शन ही तो नहीं है?

उसने इन्दुमति को अलग बुलाकर पूछा-"आप कौन हैं आपके पति क्या काम करते हैं? आप कहाँ के हैं?"

"मैं पुरन्दर देश की राजकुमारी हूँ। मेरा नाम इन्दुमति है। मेरे पति भेष बदले हुए एक राजकुमार हैं।" इन्दुमति ने बुढ़िया से बता दिया।

"आपके पति किस देश के राजकुमार हैं ?" बुढ़िया ने उत्कण्ठा से पूछा।

"यह में नहीं जानती। मैने अपने पति से पूछा भी नहीं है। हम बहुत दिनों से यात्रा कर रहे हैं।" इन्दुमति ने कहा। बुढ़िया का सन्देह और भी पक्का हो गया। उसने दरबार में जाकर कलिङ्ग राजा से कहा- "महाराज! मेरे घर मैं, एक लड़का अपनी पत्नी के साथ आया हुआ है। मुझे शक हो रहा है कि वह आपका ही लड़का है, जिसको चोर छुटपन में उठा ले गये थे।" "उन दोनों को एक बार यहाँ बुला लाओ।" राजा ने कहा।

उसी दिन शाम को बुढ़िया सुदर्शन और इन्दुमति को राज-महल में ले गयी। सुदर्शन को देखते ही कलिङ्ग राजा और उसकी पत्नी बड़े खुश हुए। उन दोनों में उन्हें भी राजा के गुण दिखायी दिये। ये राज घराने के लगे।

"बेटा! तुम हमारे लड़के ही हो। हमारे यहाँ ही रहो।" कलिङ्ग राजा ने कहा। सुदर्शन मान गया।

कुछ दिनों बाद सुदर्शन को कलिङ्ग राज्य का युबराज बनाया गया। पुरन्दर देश में यह समाचार पहुँचते ही, वहाँ के मन्त्री ने तुरन्त कहा ।

"मैने तो पहले ही कहा था न? हमारे दामाद का कलिङ्ग देश का युबराज होना हमारे लिये कितने सौभाग्य की बात है?"





मित्र-द्रोही

अलेग्जिन्ड्रिया शहर में अबूकीर नाम का एक रङ्गरज रहा करता था। वह अपने काम में हुशियार और चतुर था, पर वह आलसी और धोखेबाज़ भी था। अगर कोई कपड़े रङ्गने के लिये देता, तो वह कपड़ों को बेच देता और पैसा खाने-पीने में खर्च कर देता। वह बहुत दिनों तक ग्राहकों को ठगता रहता, और अन्त में कहता कि उसकी दुकान लुट गई थी और उनके कपड़े चोर ले गये थे।

धीमे धीमे लोगों को पता लग गया कि अबूकीर किस तरह का आदमी था। फिर भी कुछ अजनबी लोग उसको कपड़े दिया करते, और अबूकीर उनको धोखा देता। आखिर उसने रोज़ दुकान खोलना भी बन्द कर दिया। सामने वाली, नाई की दुकान में दिन भर बैठा रहता, और दुकान में आने-जानेवालों को देखता रहता। अगर वे पुगने ग्राहक होते, तो उनको दुकान पर देखने देता, और जाने देता। अगर कोई नया आदमी आता तो वह कपड़े लेता और उन्हें बेच बाचकर, खाने-पीने के लिये कुछ खरीद लेता।

पर यह कब तक जारी रहता? एक दिन अबूकीर ने देखा कि सरकारी कर्मचारीयों ने आकर उसकी दुकान के दरवाजे बन्द कर दिये हैं। क्योंकि महाजनों ने अदालत से ज़ब्ती का हुक्म ले लिया था।

नाई मलामानस और सीधा सादा आदमी था। उसका नाम आबूसीर था। "भाई! धोखेबाज़ी करके कब तक अपनी दुकान चलाओगे?" अबूसीर ने अबूकीर से कहा। "जो कुछ तुम्हें अल्लाह देता है, उससे तसल्ली क्यों नहीं करते?"

कुमारी डी. सुषमा



"मैं क्या करूँ? दिन भर काम करता हूँ, पर खाने-पीने के लिये भी काफी कमा नहीं पाता हूँ। तुम अपने पेशे में काफी वैसे बना लेते हो। इसलिये तुम ईमानदार हो सकते हो।" अबूकीर ने कहा।

"तुम्हारा गलत ख्याल है। मैं बहुत कम कमाता हूँ। अगर हम इस शहर को छोड़कर चले जायें, तो हो सकता है, हम अच्छी रोजी बना लें।" अबूसीर ने कहा।

रङ्गरेज यह मान गया। उन दोनों ने शपथ ली कि जब कोई एक बेरोज़गार हो जायेगा, तो दूसरा उसकी मदद करेगा। और जो कुछ भी वे दोनों कमायेंगे, आपस में बाँट लेंगे।

अगले दिन वे नदी में, जहाज पर निकल पड़े। जो थोड़ा-बहुत खाना उनके पास था, वह कुछ दिनों बाद खतम हो गया। नाई यात्रियों की हजामत बनाता, और बदले में उनसे भोजन लेता। कई लोग उसे भोजन भी देते, और पैसे भी।

जहाज में अबूसीर ही एक नाई था। कैप्टेन ने उसकी बुलवा भेजा। हजामत करने पर, केप्टेन ने उसको पैसा देना चाहा। मगर अबूसीर ने पैसा लेने से इनकार कर दिया।

"खैर, तुम और तुम्हारे दोस्त मेरे साथ खाना खाओ। जब खाने का समय हो तो मेरे कमरे में चले आना।"

अबूसीर ने कैप्टेन को धन्यवाद दिया। और यात्रियों से खाने-पीने की चीजे जमा करके अपने रङ्गरेज़ दोस्त के पास गया। वह जब से जहाज में आया था, तब से सो रहा था। वह सिर्फ खाने-पीने के लिये जगता। जब नाई ने उसे उठाया तो रङ्गरेज़ ने कहा- "बुरा न मानना, मेरे सिर में इतना चक्कर आ रहा है कि मैं खड़ा

भी नहीं हो सकता।" वह नाई का लाया हुआ भोजन, गबागब खाने लगा। "यह भी कोई खाना है? जहाज़ के केप्टेन ने हमें भोजन के लिये न्योता दिया है। अब खाने का समय हो गया है।" नाई ने रङ्गरेज़ से कहा।

"मैं कैसे आ सकूँगा? मैं खड़ा भी नहीं हो सकता।" रङ्गरेज़ ने खाते खाते कहा। जब नाई केप्टेन के पास खाना खाने के लिये गया तो केप्टेन ने पूछा-"तुम्हारा दोस्त कहाँ है?" "मेरे दोस्त के सिर में चक्कर आ रहा है।" नाई ने उत्तर दिया। जब उन्होंने खा लिया, तो केप्टेन ने एक तश्तरी में बहुत सारे पकवान रखवा दिये, और उन्हें उसके दोस्त के पास अपने नौकर से भेज दिया।

रङ्गरेज़ जो खूब सो रहा था, उठा और केप्टेन के भेजे हुए सब पकवान खा गया, और फिर पहले की तरह सो गया।

तीन सप्ताह बाद जाते जाते जहाज एक शहर के बन्दरगाह में पहुँचा। दोनों दोस्त जहाज से उतरे और शहर में चले गये। उन्होंने एक सराय में, एक कमरा किराये पर लिया। रङ्गरेज़ कमरे में तुरन्त सो गया।





वह रात-दिन सोता रहता, सिर्फ खाने-पीने के लिये उठता। फिर सो जाता।

परन्तु नाई हर रोज बाहर जाता, काम करता, और खाने पीने की चीज ले आता। वह अपने लिये और अपने दोस्त के लिये खाना तैयार करता, रङ्गरेज़ को उठाता और उसको खाना खिलाता। उसने अपने दोस्त को कभी बुरा-भला न कहा। जब कभी नाई शहर के दर्शनीय स्थलों को देखने जाता तो उससे वह कहता-"मैं बाहर जा रहा हूँ। तुम आराम करो।"

चालीस दिन गुज़र गये। नाई बीमार पड़ा। उसने सराय के चौकीदार को पैसे देकर बाहर से खाने की चीजे लाने के लिये कहा। अबूकीर तब भी सोता रहा। पाँचवें दिन नाई का बुखार बढ़ गया। वह बेहोश सा हो गया, और वह चौकीदार को खाना लाने के लिये बाहर न भेज सका। अबूकीर को भूख सताने लगी। वह उठा, और अबूसीर के कुरते की जेबों को टटोलने लगा। जेब में से पैसा लेकर सराय से वह शहर में घूमने चला गया।

यह बहुत सुन्दर शहर था, पर अबूकीर ने एक अजीब चीज़ देखी। उसने देखा कि लोग या तो सफेद कपड़े पहने हुये थे, नहीं तो नीले रङ्ग के । कोई और रङ्ग न दिखाई दिया। इसकी वजह जानने के लिए अबूकौर एक रङ्गरेज़ की दुकान पर गया, और अपना रुमाल रङ्गने के लिये देते हुए उसने पूछा-"क्या रङ्ग लगाओगे? और इसका तुम क्या दाम लोगे?

"मैं इसको नीला रङ्ग दूँगा। इसके बीस लिए तुम्हें बीस चान्दी की मुहरें देनी होंगी।" दुकानदार ने कहा।

अबूकीर ने दुकानदार से बातों-बातों में बहुत-सी बातें मालूम कर ली। नीला रङ्ग

शहर में बहुत मिलता था और वह बहुत सस्ता भी था। उनको और कोई रङ्ग मालूम ही न था। शहर में केवल चालीस रङ्गरेज थे, और वे आपस में इतने सङ्गठित थे कि और कोई अपनी दुकान वहाँ नहीं खोल सकता था, न उनसे बराबरी कर सकता था।

यह जानकर अबूकीर वहाँ के राजा के पास गया, और उससे कहा कि वह सब रङ्गों में कपड़े रङ्ग सकता है। उसने राजा से नई दुकान खोलने की इजाजत माँगी। राजा को यह जानकर ताज्जुब हुआ कि वह सब रङ्गों में कपड़े रङ्ग सकता था।

उसने अबूकीर को दुकान खोलने की सिर्फ इज़ाज़त ही नहीं दी, बल्कि उसको पाँच हज़ार सोने की मोहरों की पूँजी भी इस काम के लिए दी। मकान और काम करने के लिए कुछ गुलाम भी दिये।

जो कुछ रङ्गरेज़ की दुकान के लिए जरूरी था, अबूकीर ने खरीदा, और एक माहिर रङ्गरेज़ के रूप में दुकान चलाने लगा। शुरू शुरू में राजा ने उसको कई कपड़े रङ्गने के लिए भेजे। अबूकीर ने उन सब कपड़ों को तरह तरह के रङ्गों में रङ्गा, और दुकान के सामने उन्हें



लटका दिया। कपड़ों को देखने के लिये लोग जमा हो गये और उसकी दुकान का मुफ्त में ही अच्छा विज्ञापन हो गया।

राजा अबूकीर के काम से बहुत सन्तुष्ट हुआ। उसके भाग जगे। वह पैसा बनाने लगा। दरबार के सामन्त, राव उमराव, उसके पास कपड़े रङ्गने के लिए भेजने लगे, और उसको इस काम के लिए खूब पैसा देते। थोडे दिन में अबूकीर रईस हो गया। लोग उसकी पूछ करने लगे।

इस बीच में, अबूसीर सराय में तीन दिन तक बेहोश पड़ा रहा। चौकीदार



को शक हुआ कि उसने उसे क्यों नहीं बुलाया था। चौथे दिन वह उसके पास गया। अबूसीर ने, जो अब होश में आ गया था, कुरते की जेब में से पैसे लेकर, कुछ खाने पीने के लिये लाने को कहा। पर कुरते की जेब में कुछ न था। चौकीदार अबूकीर के बारे में भी न जानता था। अबूसीर की आँखों से आसू बहने लगे। चौकीदार ने उसको समझाया। उसको दलिया बनाकर भी दिया। वह अपने पैसे से ही उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लगा। एक दिन अबूसीर के सारे शरीर पर खूब पसीना आया, और उसकी बीमारी दूर हो गई। वह अच्छा हो गया।

नाई गली में अभी थोड़ी दूर ही गया था कि उसको एक बड़ी रङ्गरेज़ की दुकान दिखाई दी। रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े लटके हुये थे, और वहाँ जमा हुए लोग रङ्गरेज की प्रशंसा कर रहे थे। नाई वहाँ खड़ा हो गया।

नब उसको मालूम हुआ कि वह दुकान उसके दोस्त अबूकीर की थी, तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगा कि शायद काम की अधिकता के कारण वह उसे देखने न आ सका होगा।

अबूकीर ने अन्दर देखा तो उसका साथी, मजे में बैठा हुआ था, कितनी ही चीजें आस-पास रखी हुयी थीं। नाई को देखकर अबूकीर उससे गले लगाने के लिए नहीं उठा। इतना ही नहीं, वह गुस्से में चिल्लाया-"अरे तू फिर यहाँ आ मरा है। मुझे कितनी बार कहना होगा कि तू कम्बख़्त यहाँ न आया कर।"

उसका यह कहना था कि अन्दर से गुलाम आये और उस अभागे नाई को पकड़कर ले गये। अबूकीर ने उसे इस तरह पीटा, जैसे वह कोई कुता हो। "यहाँ

फिर कभी अपना मनहूस मुँह न दिखाना। बरना मैं तेरी शिकायत राजा से कर, तेरा सिर धड़ से अलग करवा दूँगा।"

अबूसीर को कुछ न सूझा। उसने सोचा-"शायद अल्लाह उसकी परीक्षा ले रहे हैं।" उसकी बस एक ही मर्जी थी- वह यह कि कहीं जाकर अच्छी तरह नहा ले। वह शहर भर में घूमता रहा, पर उसे एक भी स्नानागार कहीं न दिखाई दिया। अबूसीर ने एक आते-जाते व्यक्ति से पूछा-"क्या तुम बता सकते हो कि पास में कोई स्नानागार है कि नहीं?"

"स्नानागार? स्नानागार क्या बला है?" उसने अचरज करते हुए पूछा।

"इसका मतलब है, वह जगह, जहाँ लोग आकर नहा-धो सकते है।" नाई ने कहा।

"राजा हो, चाहे कोई और, अगर वह नहाना चाहता है तो उसको समुद्र में नहाना पड़ेगा।" उस व्यक्ति ने कहा।

अबूसीर को यह जानते हुए देर न लगी कि इस शहर में लोगों को यह न मालूम था कि अच्छी तरह स्नान करना किस चिड़िया का नाम है। उसने राजा के पास जाकर कहा-"यह इतना सुन्दर शहर





है, पर अफसोस की बात है कि यहाँ एक भी स्नानागार नहीं है।"

जब उसने राजा को बताया कि स्नानागार क्या होता है और कैसे चलाया जाता है तो राजा ने कहा- "तुम जितना पैसा चाहो, मैं दूंगा। तुम अपनी एक जगह चुन लो, और वहाँ एक अच्छा स्नानागार बनाओ। अपने आप उसे चलाओ और मैं देखूँगा कि सचमुच यह उतना अच्छा होगा कि नहीं, जितना तुम बताते हो।"

राजा की मदद से, अबूसीर ने शहर के बीचों-बीच एक अच्छा स्नानागार बनाया। उसने पानी को जमा करने, और गरम करने के लिये अच्छा इन्तज़ाम किया। स्नानागार के मध्य में उसने एक सुन्दर फवारा बनवाया। राजा ने उसको कई गुलाम दिये, और नाई ने उनको मालिश करना, और नहलाना सिखलाया, ताकि वे नहाने वालों की मदद कर सकें।

स्नानागार के उदघाटन के दिन राजा, सामन्त और बड़े बड़े राज्य के कर्मचारी स्नान करने आये। अबूसीर ने नहाने के पानी में गुलाब जल भी मिला दिया था, जिससे पानी महक रहा था। स्नान करने बालों की अच्छी तरह मारिश की गई और उनको भलीभाँति नहलाया गया। उन्हें मालूम ही न था कि स्नान इतनी अच्छी तरह भी हो सकता है।

राजा ने एक बार स्नान करने के लिये अबूसीर को हज़ार सोने की मुहरे दी। बाकी सब सामन्तों ने सौ सौ मुहरें। पहले पहले दिन ही अबूसीर को बहुत-सा पैसा उससे मिल गया था।

अगले दिन से स्नानागार आम जनता के लिये खोल दिया गया। स्नानागार में स्नान करने के लिए लोगों का हमेशा

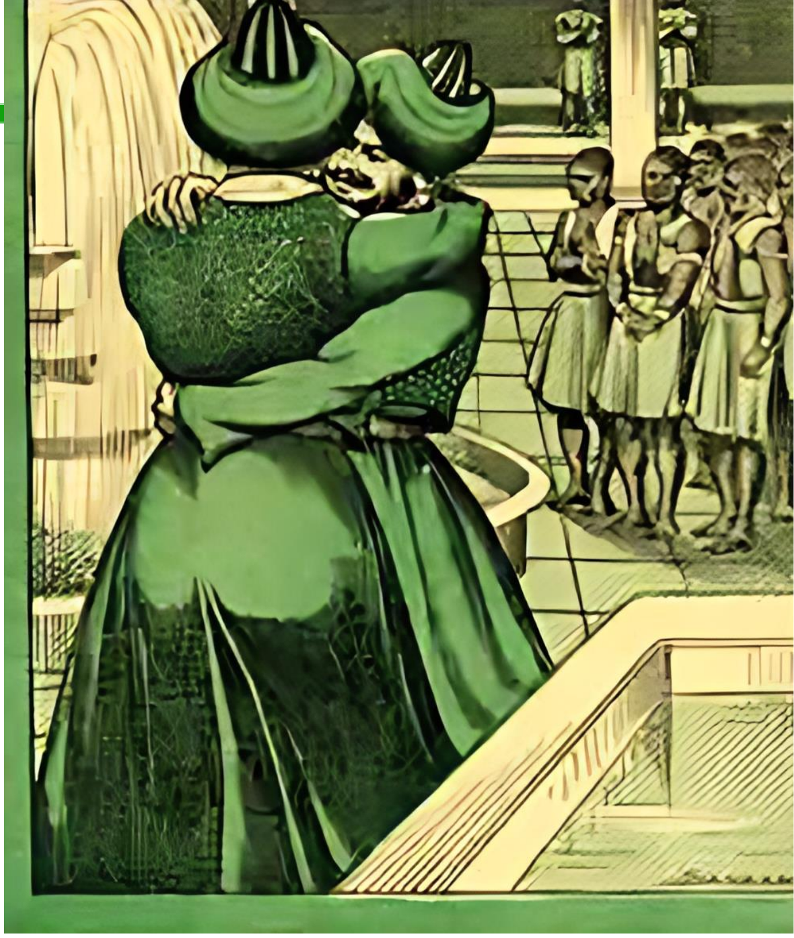
जमघट लगा रहता। जो वे देने, अबूसीर लेता। क्योंकि वह चाहता था कि गरीब से ग़रीब आदमी स्नानागार का लाभ उठाये।

एक बार जहाज़ का केप्टेन स्नान करने स्नानागार में आया। उसने अबूसीर को पहचान लिया और नहाने के बाद वह उसको पैसे देने गया। परन्तु अबूसीर ने केप्टेन से एक पाई लेना भी स्वीकार न किया। वह पहिले से ही उसका कृतज्ञ था। केप्टेन, नाई के बर्ताव से इतना प्रसन्न और प्रभावित हुआ कि मौका मिलने पर, उसने उसका उपकार करने की ठानी।

स्नानागार के बारे में सुनकर अबूकीर भी एक दिन नहाने के लिए अपने अनेक गुलामों के साथ स्नानागार में आया। अबूसीर खुद उससे मिलने के लिए आया। उसे उसने गले लगाया।

अबूकीर ने कहा-"अरे भाई, हमने तो कसम खाई थी कि हम एक दूसरे की मदद करेंगे। पर यह क्या? तुम एक बार मुझे देखने भी न आये?"

"आया तो था, परन्तु तुमने डण्डे से मेरी आवभगत की, मुझे चोर कहा और भगाया था।" अबूसीर ने कहा।



"क्या तुम ही थे, जिसे मैंने पीटा था? क्या शर्म की बात है? एक बदमाश जिसकी शक्ल-सूरत ठीक तुम्हारी जैसी थी, रोज दुकान पर आता और कपड़े या कुछ और चुरा ले जाता। आखिर वह गरीब था, इसलिये कई बार मैंने उसे कुछ न कहा। परन्तु आखिर मुझे उस पर इतना गुस्सा आया कि मैंने उसकी खूब मरम्मत कर दी। मैंने कभी कल्पना भी न की थी कि वह तुम ही थे।" अबूकीर ने कहा।

"मैं तो सिर्फ एक ही बार तुम्हारी दुकान पर आया था, तुमने उसी बार मुझे



अच्छी तरह पिटवा दिया।" अबूसीर ने झिझकते हुये कहा।

बाप रे बाप! तब तुमने कहा क्यों नहीं कि तुम थे?" अबूकीर ने पूछा।

"शायद हमारी किस्मत में यही लिखा था। हमें अब इसकी फिक्र नहीं करनी चाहिये।" अबूसीर ने जवाब दिया। उसने अपने दोस्त को बताया कि कैसे उसने स्नानागार चलाना शुरू कर दिया था। तब उसको अच्छी तरह नहलाया-धुलाया।

"स्नान तो बहुत अच्छा है, पर इसमें एक कमी है।" अबूकीर ने कहा।

"क्या कमी है?"अबूसीर ने पूछा।

"तुमने नहानेवालों के लिये चूने और संखिया का बना उपटन देने का इन्तज़ाम क्यों नहीं किया, ताकि वह अनावश्यक बाल हटा सके।" अबूकीर ने पूछा।

"अरे दोस्त! मैं तो इसके बारे में कतई भूल गया था। मैं कल ही इसका इन्तजाम कर दूँगा। सुझाव के लिये शुक्रिया।" अबूसीर ने कहा।

स्नानागार से सीधा अबूकीर राजा के पास गया और उसने कहा- "महाराज! ख़तरे के बारे में आगाह कर देना मेरा कर्तव्य है। अपाने एक अच्छा स्नानागार बनवाया है, और उसकी तारीफ़ करनी ही चाहिये। पर जिस आदमी को आपने इसको चलाने का काम सौंपा है, वह आपको नुकसान पहुँचाना चाहता है। इसमे शक नहीं कि आपको जहर देने के लिए ही उसने यह स्नानागार की चाल चली है। आप स्वयं यह जान जायेंगे, जब आपको उसका किस्सा मालूम होगा।"

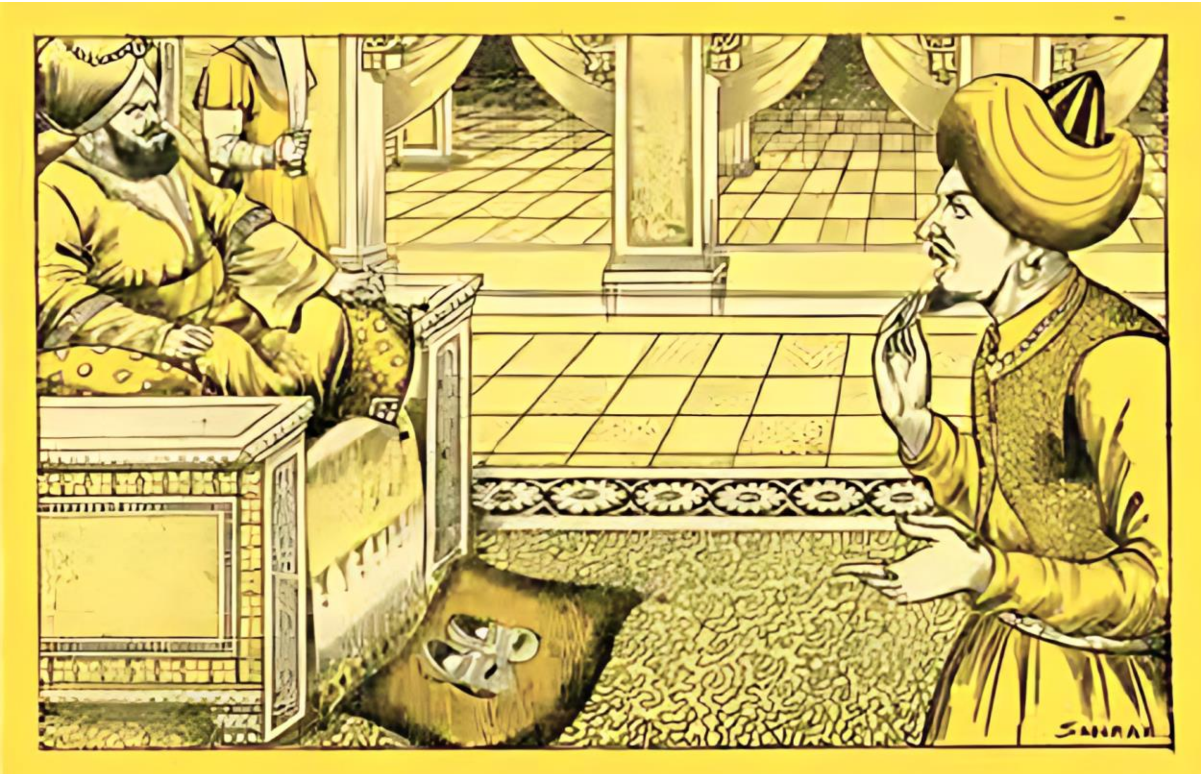
"मुझे और इस शख़्स को एक बार एक सुल्तान के कैदी होने की नौबत आई। मैंने कपड़े रङ्गने के काम में कुशलता

दिखाकर सुल्तान से अपनी रिहाई हासिल कर ली। परन्तु यह नाई, न अपने को, न अपनी पत्नी या बाल-बच्चों को ही किसी तरह छुड़ा सका। आखिर सुल्तान ने उसको इस शर्त पर छोड़ दिया कि वह आपके राज्य में जाये, और स्नानागार खोले और जहरीले उबटन से आपका खातमा कर दे। जब यह काम पूरा हो जायेगा, तब उसकी पत्नी और बाल-बच्चे छोड़ दिये जायेंगे और सुल्तान आपके राज्य पर हमला कर देगा।"

"जहरीला उबटन? अबूसीर ने कभी भी उसे मेरे शरीर पर नहीं लगाया।" राजा ने कहा।

"यही वजह है कि आप अभी सही सलामत और तन्दुरुस्त हैं। कभी न कभी वह आप पर भी यह उबटन लगायेगा, जिसमें संखिया मिला हुआ है। वह कहेगा कि उससे फालतू बाल साफ हो जाते हैं। मैने आपको सावधान कर दिया है। क्यों कि मैं नहीं चाहता कि आपकी किसी प्रकार की भी हानि हो। अच्छा है, आप उससे आइन्दा सावधान रहें।"

राजा के कान भरकर अबूकीर चला गया। राजा अबूसीर के प्रति बहुत ही क्रुद्ध था। वह अपने गुलामों के साथ अगले





दिन स्नानागार गया। अबूसीर ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। उसने खुद राजा की मालिश की, वह उबटन भी लगने के लिये लाया।

"यह क्या चीज़ है?" राजा ने पूछा।

"यह बाल साफ करनेवाला उबटन है।" अबूसीर ने जवाब दिया।

राजा ने उबटन सूँघा, और उसमें उसको संखिया की बू आई। उसने गुस्से में अपने गुलामों को आज्ञा दी- "पकड़ लो, इस विश्वासघाती को, और उसको दरबार में हाज़िर करो।" राजा बिना नहाये ही चला गया।

जब अबूसीर दरबार में ले जाया गया तो राजा जहाज के कप्टेन से कह रहा था-"इस बदमाश को अपने साथ ले जाओ। उसको चूने के बोरे में रखकर समुद्र में डाल दो, ताकि बेमौत, घुल घुलकर वह मरे।"

केप्टेन और कुछ न कह सका, सिवाय इसके कि "हाँ महाराज !" पर जब वह अबूसीर को घर ले जा रहा था तो उसने उससे पूछा-"तुमने क्या कर डाला कि राजा तुमसे इतने खौफ खाये हुये हैं। मैं तो समझता था कि तुम बहुत भले आदमी हो।"

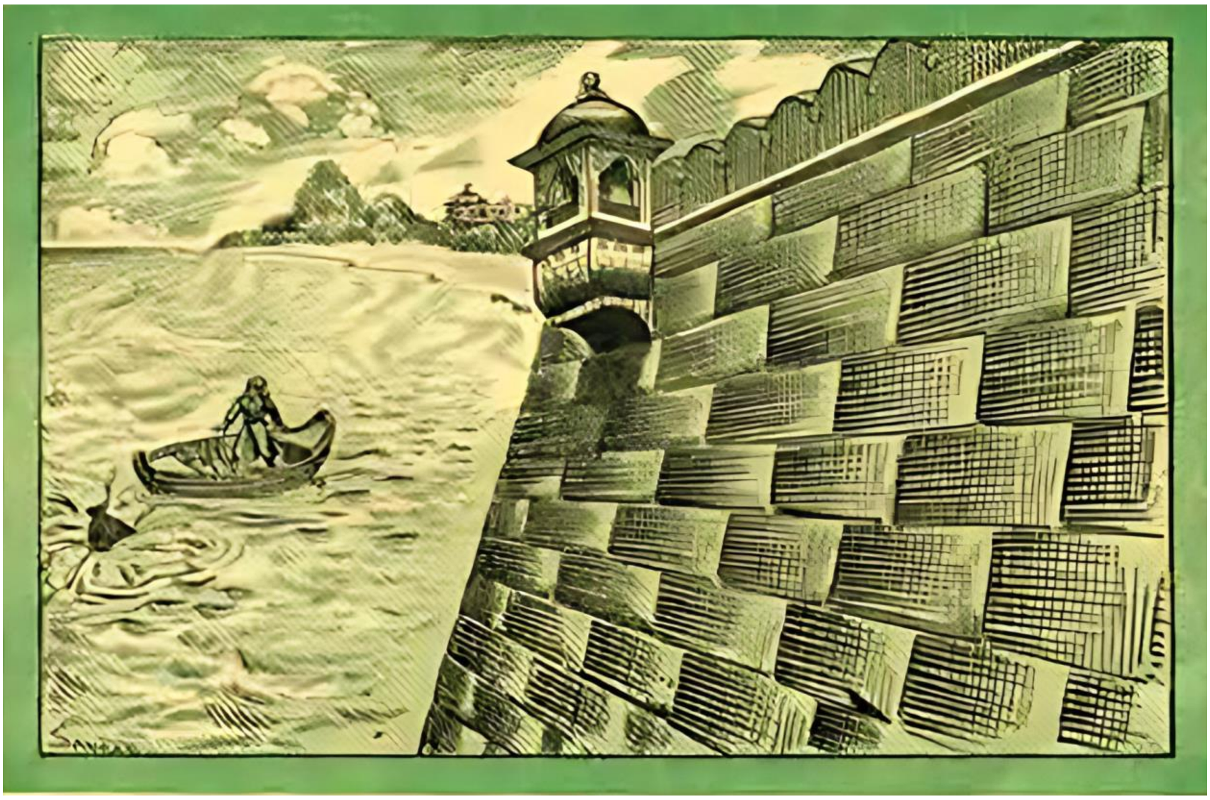
"अल्लाह की क़सम। मैंने कुछ नहीं किया। पर राजा फालतू मुझे सज़ा न देंगे, वे तो मुझ पर बड़े मेहरबान थे।" अबूसीर ने बड़े विनीत भाव से कहा।

"कुछ भी हो! मैं तुम्हें बैसी मौत मरने नहीं दूँगा। एक जाल ले लो, और समुद्र के एक द्वीप में चले जाओ। अन्धेरा होने तक तुम वहाँ मछलियाँ पकड़ते रहो। अन्धेरा होने के बाद राजा का रसोइया मछली के लिए आयेगा। इस बीच में, एक लकड़ बोरे में रखकर, में समुद्र में छोड़ दूँगा। सचाई बाद में मालूम हो जायेगी।" जहाज के केप्टेन ने अबूसीर से कहा।

नाई मछली पकड़ने के लिए समुद्र के द्वीप में चला गया, और केप्टेन ने एक बोरे में, दो मन चूना, और लक्कड़ बाँध दिया, और बोरे को एक छोटी नाव में रखकर महल की तरफ गया। खिड़की में राजा बैठा हुआ था। उसने हाथ से इशारा किया कि बोरे को पानी में फेंक दिया जाय। जब उसने इशारा किया, तब कोई चीज़ हवा में उड़ी, और पानी में टप की आवाज़ से गिरी।

केप्टेन ने बोरे को पानी में फेंक दिया। गरम गरम बुलबुले, और भार निकलने लगी। इधर, शाम तक असीर ने काफी मछलियाँ पकड़ ली थीं। सबेरे से उसने कुछ खाया न था, इसलिये वह बहुत भूखा था। जाने से पहले वह एक मछली पकाकर खाना चाहता था। उसने एक बड़ी मछली पकड़ी और अपने चाकू से उसके दो टुकड़े किये। उसने मछली के अन्दर एक अंगूठी देखी। उसने तुरन्त उस को बाहर निकला। वह राजा की अँगूठी थी।

"अल्लाह ही सब जानते हैं।" अबूसीर ने सोचा। उसके लिये यह जानना असम्भव था कि कैसे उसके जाल में ऐसी





मछली फँसी, जिसने राजा की अंगूठी निगल ली थी। फिर उस मछली को ही क्यों उसने खाने के लिये चुना था। वह केप्टेन के घर गया। उसको उसने अंगूठी दिखाकर कहा-"यह तुरन्त राजा को लौटा दी जानी चाहिये। इसके बगैर उनको बड़ी दिक्कत होगी। मैं इसको उन्हें वापिस लौटाने जा रहा हूँ।"

केप्टेन घबराया। अगर राजा अबूसीर को देखता तो उसे मालूम हो जाता कि केप्टेन ने उसके हुक्म का पालन न न करके उसको धोखा दिया था।

"घबराओ मत। अल्लाह सब देखते हैं। कम से कम में तो जान पाऊँगा कि मेरा क्या कसूर है।"

राजा अबूसीर को देखकर बड़ा चकित हुआ। तुम बोरे से कैसे निकल आये?" उसने पूछा।

अबूसीर ने जो गुज़रा था, सो राजा को कह सुनाया और उसको उसकी शाही अंगूठी सौंप दी। राजा नाई की कर्तव्य निष्ठा को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। "तुम तो बड़े अच्छे, वफादार, भलमानस लगते हो। तब तुमने हमारी जान लेने की क्यों काशिश की थी?" राजा ने पूछा।

मैंने कभी ऐसी कोशिश नहीं की महाराज। किसी ने आपसे मेरी चुगली की है।" अबूसीर ने कहा।

"मुझे रङ्गरेज अबूकीर ने ही बताया था। मालूम होता है कि तुम्हारी पत्नी और बाल-बच्चे किसी सुल्तान की कैद में हैं, और तुमने उन्हें छुड़ाने के लिए मुझे मारने का वचन दिया है। तुमने उस उपटन में संखिया मिलाया था न?"

अबूसीर दो क्षण के लिए सन्न खड़ा रहा। उसके मुख से कोई बात न



निकली। तब उसने कहा-"जो कुछ मैं अबूकीर के लिये कर सकता था, मैंने किया। मैंने कभी उसका नुकसान न सोचा, न किया। तो भी उसने मेरा पैसा चुराया, बिना किसी बात के मुझे पिटवाया। बिना किसी वजह के मुझे मौत की सजा दिलवाई। वह स्नानागार में एक मित्र की तरह आया। उसने वहाँ के प्रबन्ध की प्रशंसा की, और उसी ने सुझाव दिया था कि अगर कोई कमी है तो बाल साफ करनेवाले उबटन की ही है। फिर उसी ने आपके पास दौड़े दौड़े मेरी शिकायत की कि मैं आपको मारना चाहता था। इस तरह के बोखेबाज़ दोस्त के बारे में कोई क्या सोच सकता है? आप ही सोचियेगा।"

"तो तुम कहते हो कि उबटन जहरीला नहीं है?" राजा ने पूछा।

"नहीं महाराज। यह कतई बेख़तर है। इमारे देश में हर कोई इसका इस्तेमाल करता है। जब तक उस आदमी ने बताया था, न जाने मैं क्यों इसे मूल गया था।" अबूसीर ने जवाब दिया।

जो कुछ गुज़रा था, अबूसीर ने राजा के सामने कह सुनाया। राजा ने सराय के चौकीदार और रङ्गरेज़ के गुलामों को बुला मेजा। चौकीदार ने अबूसीर को पहचान लिया, और उसने राजा को यह भी बताया कि किस तरह उसका दोस्त, जब वह बेहोश पड़ा था, उसका सारा पैसा चुराकर ले गया था। अबूकीर के गुलामों ने भी कबूल कर लिया कि उन्होंने अपने मालिक के हुक्म पर ही अबूसीर को बहुत मारा-पीटा था।

राजा ने अबूकीर को तुरन्त गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। उसको, हाथ-पैर बाँधकर दरबार में लाया गया। उसको

देखते ही चौकीदार ने कहा-"यह वही व्यक्ति था, जो दिन-रात सोता रहता था, और सिर्फ खाने-पीने के लिए उठा करता था। इसी ने उसका पैसा चुराया था, जब यह बुखार से बेहोश पड़ा था।"

जो जो अबूसीर ने कहा था, वह ठीक निकला और अबूकीर का अपराध और भी पक्का साबित हुआ।

"इसे चूने के बोरे में डालकर समुद्र में फेंक दो। यही उसकी सजा है।" राजा ने नौकरों को हुक्म दिया।

अबूसीर ने राजा से अपने पुराने दोस्त को माफ़ करने की बिनती की। "जो कुछ बुरा उसने तुम्हारा किया, तुम उसको माफ कर सकते हो, पर उसने मेरा जो नुकसान किया है, वह मैं कभी भी माफ नहीं कर सकता।"

राजा के हुक्म के अनुसार अबूकीर को चूने के बोरे में डालकर समुद्र में फेंक दिया गया। वह बुरी मौत मरा।

जब राजा ने अबूसीर को बुलाकर पूछा-"मैं अब तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?" तब उसने उत्तर दिया-"मुझे अपने देश वापिस जाने दीजिये। मैं अब यहाँ अपने को सुखी अनुभव नहीं करता।"

राजा ने उसको कई तरह के क़ीमती उपहार दिये, और उसके जाने के लिए एक जहाज़ का भी प्रबन्ध कर दिया। जब वह जा रहा था तो उसे एक बोरा तैरता हुआ दिखाई दिया। उसने उसको जहाज़ के ऊपर खिंचवाया। उसमें उसके दोस्त अबूकीर का शव था। उसने शव को अलेग्जेन्ड्रिया ले जाकर दफना दिया और वहाँ उसके लिए एक मकबरा भी बनवाया।





भेड़ोंवाला भीम

एक गाँव में बनवारी नाम का गड़रिया रहा करता था। एक दिन जब वह चरागाह में अपनी भेड़-बकरियों को चरा रहा था तो उसे एक पेड़ के नीचे, चीथड़ों में लिपटा हुआ दो दिन का बच्चा मिला। बनवारी के अपने कोई बाल-बच्चे न थे, इसलिये बच्चे को पा वह बड़ा प्रसन्न हुआ। शाम तक उस बच्चे को वह एक भेड़ का दूध पिलाता रहा, फिर उसे घर ले गया।

तब से वह भेड़ ही मानों उसकी माँ हो गई। उसका दूध पीकर वह छोटा बच्चा खूब हृष्टपुष्ट हो गया। उसके बढ़ते बल को देखकर, गड़रिये ने उसका नाम भीम रखा।

या तो उसकी नसल ही ऐसी थी, या भेड़ के दूध की महिमा थी कि थोड़े दिनों में वह बहुत ताकतवर हो गया। वह आसानी से पेड़ों को उखाड़कर फेंक दिया करता था। पत्थरों को चूर चूर कर दिया करता था।

जब भीम चौदह वर्ष का हुआ तो उसके पिता ने कहा-"बेटा! तुम्हारा नाम अब ही इतना मशहूर है, भला तुम गड़रिया बनकर क्या करोगे? देश-विदेश घूमकर, बड़े होओ और धनी होओ। जाओ अपना भाग्य और कौशल दिखाओ।"

भीम घर से निकला। उसने कई शहर देखे। कई बड़े बड़े पहलवानों को उसने हराया।

श्री केबल कृष्ण कपूर

कुछ समय गुज़रा। जब भीम, एक नगर के पासवाले जङ्गल में से गुज़र रहा था, तो उसे एक आदमी दिखाई दिया। वह आदमी बड़े बड़े पेड़ों को तोड़कर उनके टुकड़े टुकड़े कर रहा था। भीम ने उसके पास जाकर पूछा-"क्यों भाई! क्या बात है? क्यों इस तरह पेड़ों को तोड़-फाड़ कर तितर-बितर कर रहे हो?"

"सुना है, भेड़ोंवाला भीम आ रहा है। उसको हराने के लिये ही में इस तरह कसरत कर रहा हूँ।" उसने सीना तानकर जवाब दिया। "मैं ही भेडोवाला भीम हूँ। चाहते हो तो आओ मुझे जीतो।" भीम ने कहा।

दोनों में मुक्कामुक्की शुरू हुई। दोनों खूब ताकतवर थे। भीम ने पेड़ फाड़नेवाले पहलवान की कमर पकड़कर उसे नीचे दे मारने की कोशिश की। पर वह पैंतरा बचाकर दूर चला गया, और भीम की छाती पर कूदा। दोनों पैरों से उसने उसे मारना चाहा, परन्तु भीम ने उसके दोनों पैरों को रस्सी की तरह लपेटते हुए दूर फेंक दिया। उनके भयकर युद्ध के कारण भूमि भी काँपने लगी। आखिर, भीम ने उस व्यक्ति को दोनों हाथ पकड़कर ऊपर उछाला, जैसे वह कोई



गेन्द हो। जब वह ज़मीन पर गिरा, तो ज़मीन में वह घुटनों तक गड़ गया। परन्तु जैसे तैसे वह बाहर निकल आया, और भीम को उठाकर उसने भूमि पर मारा। उसकी चोट के कारण मीम जाँघों तक ज़मीन में गड़ गया। उसे गुस्सा आ गया। वह बाहर निकला। उसने उस व्यक्ति को उठाकर इस तरह पटका, जैसे किसी कील को ज़मीन में गाड़ रहा हो। उसको उसने गले तक दाब दिया था।

"बस करो भाई! तुम ही जीते। मुझे ऊपर खींचो। मैं अब से तुम्हारा शिष्य हूँ। तुम्हारे साथ ही रहूँगा।" उस व्यक्ति ने हाथ जोड़कर कहा। भीम ने उसे ऊपर निकाला और अपने साथ लेकर चल दिया।

दोनों घूमते घूमते एक पहाड़ी इलाके में गये। वहाँ उन्हें एक विचित्र मनुष्य दिखाई दिया। यह आदमी बड़े बड़े पत्थरों को हाथ में लेकर पीस रहा था।

"क्यों भाई! पत्थरों को यों पीस रहे हो?" भीम ने पूछा।

"सुना है, मेडोवाला भीम आ रहा है। मैं उसको हराने के लिये इस तरह कसरत कर रहा हूँ।" उस व्यक्ति ने बड़े गर्व से जवाब दिया।





"मैं ही भेड़ोंवाला भीम हूँ। चाहते हो तो आओ, हराओ।"

दोनों भिड़ गये। इस व्यक्ति की भी वही गति हुई, जो पेड़ चीरनेवाले की हुई थी। वह भी भीम का शिष्य हो गया और उसके साथ निकल पड़ा।

तीनों चलते चलते एक शहर में पहुँचे। वहाँ उन्हें एक अजीब आदमी दिखाई दिया। वह बड़े बड़े लोहे के गोलों को लेता, और ऐसे उन्हें गूँथता जैसे कोई आटा हो।

"क्यों भाई, इस तरह लोहे को क्यों गूँथ रहे हो?" भीम ने उससे पूछा।

"सुना है, भेडोवाला भीम आ रहा है। उसको हराने के लिये मैं कसरत कर रहा हूँ।" उसने कहा।

"मैं ही भेड़ोंवाला भीम हूँ। चाहते हो तो आओ, मुझे हराओ।" भीम ने कहा। दोनों लड़ने लगे। इसकी भी वही गति हुई, जो पहले दो व्यक्तियों की हुई थी। वह भी औरों की तरह भीम का शिष्य हो कर उसके साथ चल पड़ा।

चारों चलते चलते एक घने जङ्गल में पहुँचे। पहले दिन, पेड़ों को चीरनेवाले पहलवान को रसोई का काम सौंप औरों को साथ लेकर भीम जङ्गल में शिकार खेलने चला गया।

जब वह रसोई बना रहा था तो एक बौने ने आकर उससे कहा-"भाई! भूख लग रही है। कुछ खाने को दोगे?"

"जा वे हट! भाग यहाँ से, खाना-बाना कुछ नहीं मिलेगा।" बौना थोड़ी दूर जाकर बैठ गया। जब खाना बन गया, वह पीछे से आकर उस व्यक्ति की छाती पर चढ़ बैठा, और उसे नीचे गिराकर खूब पीटा, और खा-पीकर आराम से चलता बना। पहलवान देखता रह गया।

बौने की करामात देखकर पेड़ चीरनेवाला पहलवान बहुत शर्मिन्दा हुआ। वह शिकार पर गये हुए लोगों को यह बात न बताना चाहता था। इसलिये वह फिर खाना बनाने लगा। परन्तु खाना बनने से पहले ही वे लोग शिकार खेलकर आ गये। जब बहुत देर तक खाना न बना तो भेड़ोंबाले भीम ने ऊबकर कहा- "तुम्हें खाना बनाना भी नहीं आता है?"



अगले दिन उसने पत्थर पीसनेवाले को खाना बनाने का काम सौंपा, और औरों को साथ लेकर शिकार खेलने चला गया।

उस दिन भी वह बौना आया। उसकी भी वही हालत हुई, जो पेड़ चीरनेवाले की हुई थी। जब भीम वगैरह वापिस आये तो वह भी दूसरी बार खाना पका रहा था। उसने भी अपने साथियों से कुछ न कहा। वह भी शर्म के मारे मरा जाता था।

तीसरे दिन लोहे के गोलों को गूंथनेवाले को रसोई का काम सौंप, भीम औरों के साथ जङ्गल में शिकार खेलने चला गया। फिर बौना आया। उसने उस पहलवान को नीचे पछाड़ा, और सब खा पीकर वह चला गया। पहलवान विचारा कुछ भी न कर पाया। वह देखता रह गया। भीम जब वापिस आया, तो खाना न बना था। उसे आश्चर्य हुआ। वह ताड़ गया कि जरूर कोई न कोई बात है, और शिष्य बताने में शर्मा रहे हैं। चौथे दिन उसने खाना बनाने का काम अपने ऊपर लिया, और शिष्यों को जङ्गल में शिकार खेलने के लिये भेज दिया।

खाना तैयार होने को था कि बौना फिर आया। उसने भोजन माँगा। भीम ने बर्तन उठाकर कहा-"चल वे हट।" बौना न हटा और भीम का गला पकड़कर

लटकने लगा। भीम ने उसको पकड़कर दूरी पर, एक पेड़ के साथ बाँध दिया।

शिष्य यह सोच रहे थे कि इस बार गुरूजी का अपमान होगा। पर वहाँ खाना तैयार देखकर उनको आश्चर्य हुआ।

"तुम उस बौने को भी न जीत सके? है किस काम की तुम्हारी अक्ल? खाना स्वाओ। फिर दिखाऊँगा, मैंने उसकी क्या गत बनायी है।" मीम ने कहा।

भोजन के बाद चारों उस पेड़ के पास गये, परन्तु वहाँ पेड़ न था। जहाँ पेड़ होना चाहिये था, वहाँ एक बहुत बड़ा गढ़ा था।

पेड़ को घसीटकर बौना ले गया था। इसके निशान जमीन पर दिखाई दे रहे थे। चारों उन निशानों को देखते देखते आगे आगे चले। उनको बड़ा अचरज हो रहा था।

वे निशान यकायक एक बड़े गढ़े में ख़तम हो गये। जब गढ़े के अन्दर भेड़ोंवाले भीम ने झुककर देखा तो कहीँ उसका तह ही न दिखाई देता था।

"मैं इस टोकरी में बैठता हूँ। मुझे रस्सी के सहारे नीचे उतारो। जब मैं उस बौने की मरम्मत कर दूँ, तब मुझे ऊपर खींच लेना।" भीम ने कहा।

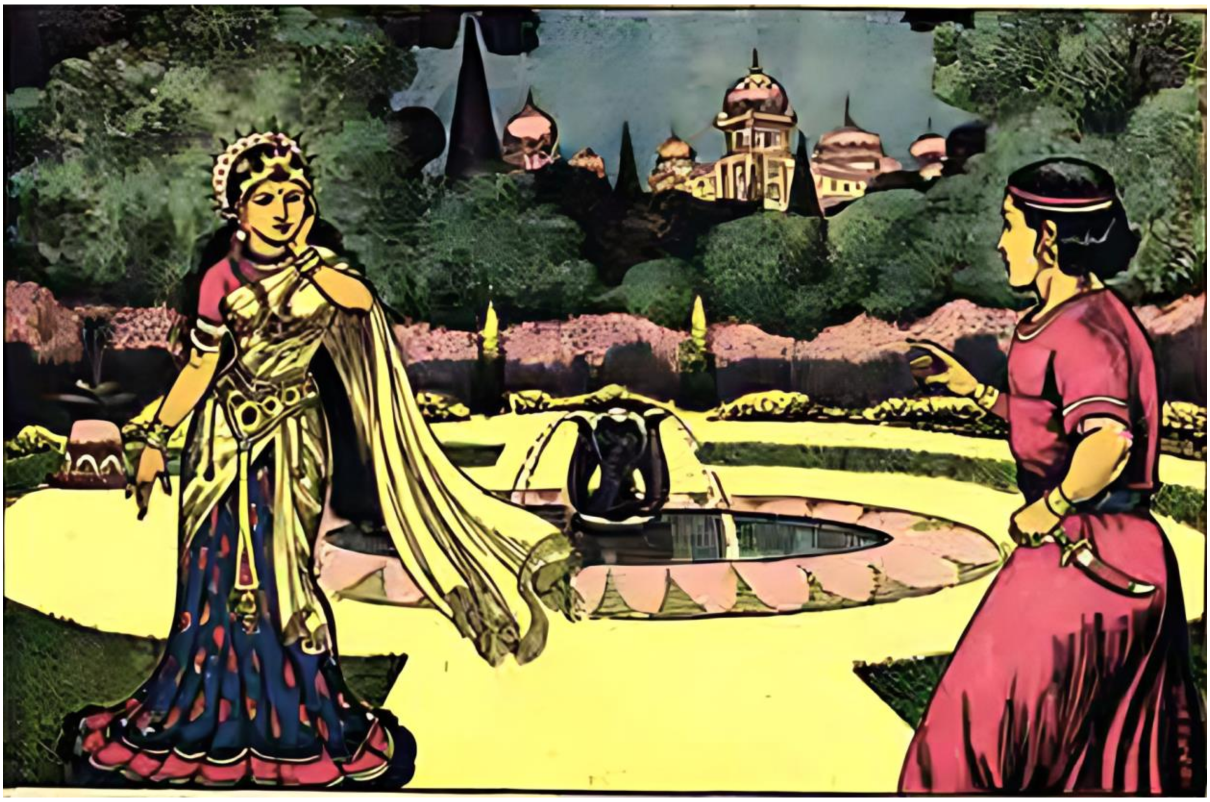


बहुत नीचे जाकर, टोकरी ज़मीन पर जा लगी। वहाँ सुन्दर बाग-बगीचे, मकान वगैरह थे। बगीचे में घूमते-घूमते भीम ने एक सुन्दर कन्या को देखा। वह भीम को देखते ही घबरा उठी-"तू यहाँ क्यों आया है? यह नाग लोक है। अगर बारह फ़नवाले नागेन्द्र ने तुझे देख लिया तो जिन्दा न छोड़ेगा। यहाँ से भाग जा।" उस कन्या ने कहा।

"नागेन्द्र को मुझे देखकर डरना चाहिये। मैं भला क्यों नागेन्द्र से डरूँ? खैर, तू कौन है?" भीम ने पूछा।

"मैं एक राजकुमारी हूँ। मुझे और मेरी तीन बहनों को नागेन्द्र ने यहाँ पकड़ कर रख रखा है। अगले नाग पञ्चमी के दिन, केञ्चुली छोड़ हम से वह विवाह करेगा।" उस कन्या ने कहा।

वे बातें कर ही रहे थे कि बारह फणोंवाला नागेन्द्र उस तरफ आ पहुँचा। भीम को देखते ही उसने फुँफकारते हुए कहा-"घमण्डी! तेरी इतनी हिम्मत कि मेरी जगह भी आ गया है। यहाँ मेरा स्थान बल है। अब देखें, कैसे बच निकलेगा?" कहता कहता वह भीम पर



कूदा। नागेन्द्र भीम को अपने शरीर से लपेटने की कोशिश करने लगा।

कहीं ऐसा न हो कि नागेन्द्र उसको चूर चूर कर दे, भीम ने अपना शरीर लोहे का सा बना लिया। यह देख अपने बारह फणों से फुँफकारते हुए, नागेन्द्र ने भीम की ओर देखा। भीम ने अपने दोनों हाथ से फण को जोर से पकड़ लिया। नागेन्द्र ने अपने को छुड़ाने के लिये, अपने शरीर को उसके बाहु पर लपेटना शुरू किया। पर कोई फायदा न हुआ। भीम ने अपनी पकड़ ढीली न की। नागेन्द्र के फण को उसने जोर से जमीन पर मारा। उस चोट से नागेन्द्र के होश-हवाश उड़ गये। उसकी पकड़ ढीली पड़ गई। नागेन्द्र का शरीर भी ऊपर से धीमे धीमे फिसलने लगा। भीम इस बार भी जीता।

आखिर नागेन्द्र भी मरता-जीता, जमीन पर गिरा और हाँफ हाँफकर कहने लगा-"मुझे भी अपना शिष्य बना लो।"

"अगर तू बलवान है तो अपनी दुनियाँ में ही रह। अगर तू हमारी दुनियाँ में आया तो ख़बरदार! चीर-फाड़कर फेंक दूँगा। समझे?" भीम ने उसको आगाह किया और शान से खड़ा रहा।

बाद में, चारों राजकुमारियों को अपने साथ टोकरी में बिठाकर उसने रस्सी हिलायी। भीम के शिष्यों ने टोकरा ऊपर खींच लिया।

भीम और उसके साथियों ने उन चारों राजकुमारियों के साथ विवाह कर लिया, और वे अपने ससुर के घर ही रहने लगे। फिर कभी बारह फणवाला नागेन्द्र इस भूमि पर न दिखाई दिया। शायद उसे भय है कि अब भी भेड़ोंवाला भीम इस संसार में है।





करिपुर के राजा का नाम बलवर्धन था। उसकी पत्नी एक कन्या को जन्म देकर मर गई थी। राजा ने दुबारा विवाह किया। पर दूसरी पत्नी से उसकी कोई सन्तान न हुई। राजा ने लड़की का नाम हेमा रखा, और उसका बड़े लाड़-प्यार से लालन-पालन करने लगा। क्योंकि हेमा को ही उसके बाद गद्दी पर बैठना था, राजा ने उसको समस्त विद्यायें सिखलायीं।

हेमा खूब पढ़ी-लिखी ही न थी अत्यन्त सुन्दरी भी थी। अगर उसको देखकर कोई जलती थी तो वह उसकी सौतेली माँ थी। राजा जो कोई सम्बन्ध उसके विवाह के लिए ढूँढ़ता तो वह कह देती-"इससे और अच्छा सम्बन्ध मिलेगा।" इस तरह की अड़चनें वह पैदा करती आयी थी।

एक बार बलवर्धन राजा शिकार खेलने गया। सौतेली माँ ने हेमा के पास आने के लिए बार-बार खबर भिजवायी। हेमा ने पहिले तो जाना नहीं चाहा, फिर यह सोचकर कि उसकी आज्ञा की अवहेलना करना अच्छा न होगा, वह शाम को सौतेली माँ को देखने चली गयी।

सौतेली माँ ने इस तरह प्रेम दिखाया, जैसे वह उस पर जान देती हो। उसे खूब खिलाया पिलाया। उसके बाद सौतेली माँ ने हेमा पर चन्दन लगाया, फूल भी दिए। अगरबती का सुगन्ध सुँघाने के बहाने हेमा को उसने कुछ सुँघा दिया । उसको सूँघते ही हेमा मूर्छित हो गिर पड़ी।

राजा की पत्नी ने मूर्च्छित हेमा को एक लकड़ी के बड़े सन्दूक में लिटा दिया;

श्री रामनारायण जायसवाल



आधी रात के समय अपने नौकरों को बुलाकर, उस सन्दुक को, महल की दीवार से परे, श्मशान में फिंकवा दिया।

उसी दिन रात को, विजय नाम का नौजवान घोड़े पर सवार हो, किसी दूर देश से वहाँ आया था। अन्धेरे में उसे एक झोंपड़ा दिखायी दिया। उसी में क्यों न आराम किया जाय, यह सोचकर वह आगे बढ़ा ही था कि उसे दो-तीन चितायें जलती हुई दिखायी दीं। यह देखकर वह जान गया कि वह श्मशान में था। उस झोपड़े में श्राद्ध आदि की विधि पूरी की जाती थी।

घोड़े को बाहर बाँधकर विजय झोपड़े के अन्दर गया। पर उसे नींद न आयी। इतने में घड़ाम से किसी चीज़ के गिरने का असे शब्द सुनायी दिया। तुरन्त चिता में से एक जलती लकड़ी उठाकर, विजय उस तरफ गया, जहाँ से आवाज़ आयी थी। जलती लकड़ी की रोशनी में उसको एक सन्दुक दिखायी दिया। जब सन्दूक खोला, तो उसने एक खूबसूरत लड़की को मूर्च्छित अवस्था में पाया। वह बड़ा चकित हुआ।

विजय उसको अपने हाथों पर उठाकर झोपड़े में लाया। उसे होश में लाने के लिए उसने बहुत प्रयत्न किया पर वह सफल न हुआ। उसे मालूम हो गया कि किसी दुश्मन ने उसकी यह हालत की थी। सवेरा होने को था। इसलिए विजय उस लड़की को घोड़े पर चढ़ाकर, सबेरा होने से पहले एक गाँव में पहुँच गया; और वहाँ एक ब्रह्मण के घर जाकर उसने कहा-"महाशय! हम बहुत दूर से चले आ रहे हैं। मेरी पत्नी बहुत बीमार है। क्या आप हमें दो दिन अपने घर में रख सकेंगे? मैं इसका इलाज करवाना चाहता हूँ। आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।"

वह ब्राह्मण मान गया और उसने कोने में एक कमरा दिखा दिया। दिन भर विजय हेमा की उपचर्या करता रहा। शाम को जाकर उसको कहीं होश आयी। वह विजय को देखकर चकित हुई। जो कुछ वह जानता था उसने उसे बताया। बाद में हेमा ने उसे अपनी जीवनी भी सुनायी। यद्यपि लाचारी में, विजय ने ब्राह्माण के सामने उसको अपनी पत्नी कहा था, पर उसने मन में उसको अपना पति स्वीकार कर लिया था। वह बहुत खुश हुई।

थोड़े दिनों में हेमा पूरी तरह स्वस्थ हो गयी। पर उन दोनों पर एक और आफत आ पड़ी। बलवर्धन ने शिकार से लौटकर हेमा के बारे में पूछ-ताछ की तो उसकी पत्नी ने बताया कि वह किसी के साथ भाग गयी है। राजा को गुस्सा आया। उसने हेमा को खोजने के लिए चारों ओर सैनिकों को भेजा। लोगों को यह बात कहता सुन, विजय ने घर आकर हेमा को भी बतायी। दोनों ने सोच-विचारकर उसी रात कहीं चले जाने की ठानी। क्योंकि अगर हेमा सच भी कहती तो राजा विश्वास न करता। हेमा पर ही केवल आफत न



आती, विजय पर भी मुसीबत आती, जिसने उसकी प्राण-रक्षा की थी।

विजय और हेमा जब आपस में सलाह-मशवरा कर रहे थे, तो ब्राह्मण ने भी उनकी बातें सुन लीं। वह जान गया कि हेमा राजकुमारी थी और सौतेली माँ ने उसको मार देने का प्रयत्न किया था।

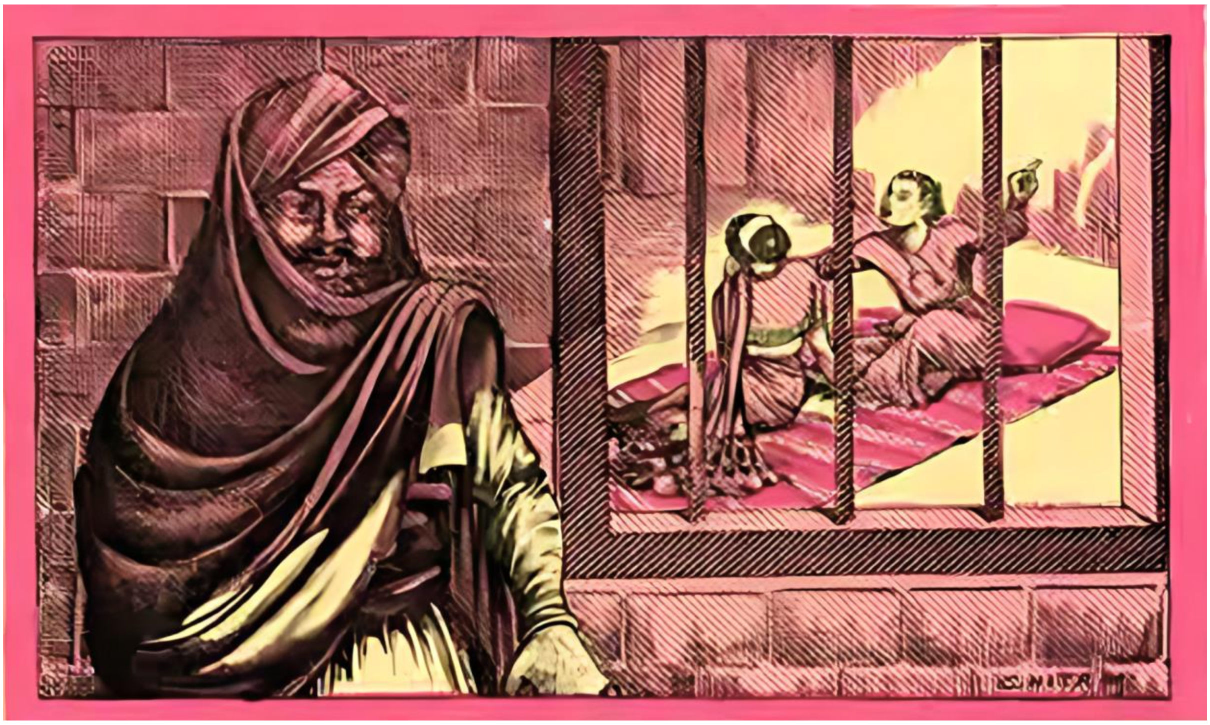
उसी दिन रात को, अपने निश्चय के अनुसार विजय और हेमा वहाँ से चले गये। वे बहुत दिनों तक इधर-उधर घूमते रहे। घूमते-घूमते वे जयपुर शहर में पहुँचे, और वहाँ एक सराय में पड़ाव किया। रात को

हेमा न सो सकी। कभी कष्ट भोगे न थे; लाड़-प्यार से पली थी। अब परदेश में हर तरह की मुसीबतें झेल रही थी।

विजय ने उसको ढाढस बँधाते हुए कहा-"हेमा, फिक्र न करो। अगर में यहाँ के राजा से एक बार मिल सका, तो मैं सतमझिले महल में सोने के झूले पर न झूलाऊँगा।" यह बात जयपुर के राजा भीमवर्मा के कान में भी पड़ी।

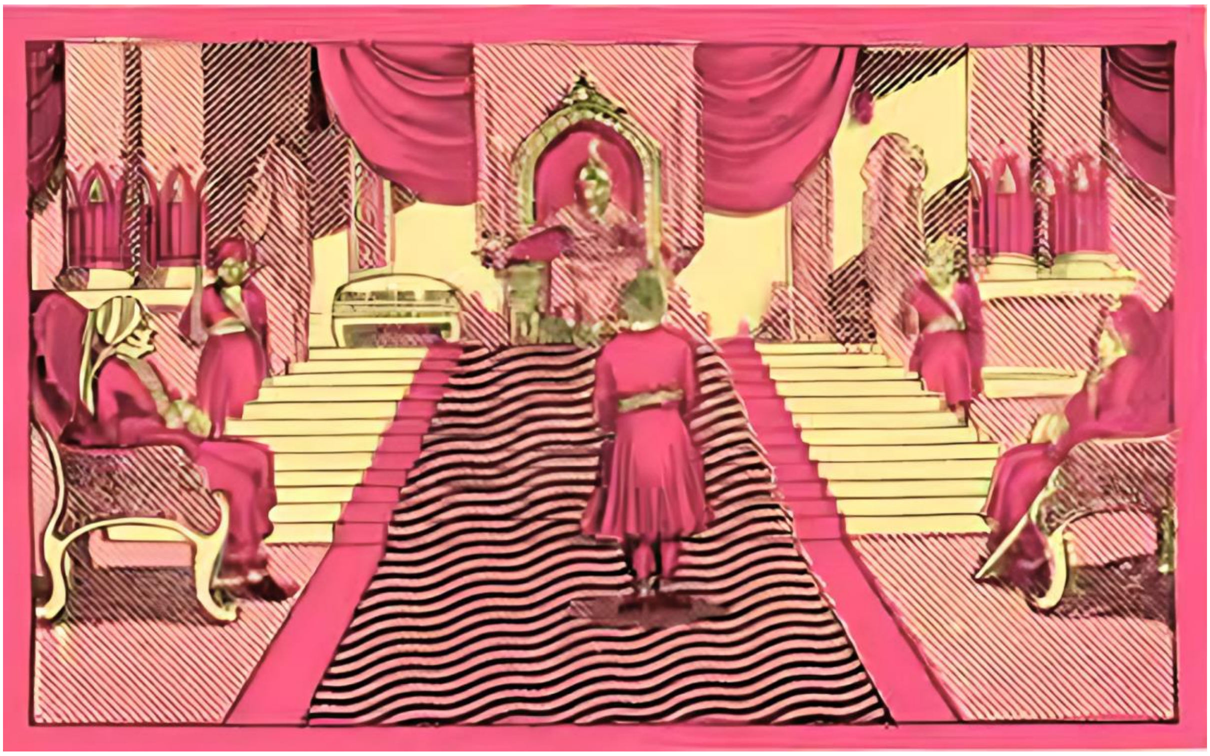
बात यों थी कि भीमवर्मा महीने में एक बार वेष बदलकर, रात को यह जानने के लिये घूमता कि लोग उसके बारे में क्या सोच रहे थे। जब वह वेष बदलकर सराय के पास पहुँचा तो विजय की बात उसे सुनायी दी। उसने जानना चाहा कि देखें, यह लड़का सिर्फ मेरे दर्शन मात्र से कैसे इस लड़की को सतमझिले मकान में रखता है? उसने अगले दिन दरबार में आते ही मन्त्री को बुलाकर कहा-"सराय में कोई नौजवान पत्नी के साथ ठहरा हुआ है। तुरन्त सिपाहियों को भेजकर उसको दरबार में निमन्त्रित कीजिए।"

सिपाही सराय में जाकर विजय को गौरवपूर्वक दरबार में लाये। भीमवर्मा ने



उसे देखते ही सिंहासन के पास आसन देकर बैठने के लिए इशारा किया। उसने विजय से कुछ भी बातचीत न की। दोपहर को दरबार स्वतम हुआ। राजा के साथ दरवारी उठे। बहुत से दरबारी राजा की इज़ाज़त लेकर चले गये। बाकी अपने अपने ओहदा हैसियत के मुताबिक, राजा के साथ एक मञ्जिल, दूसरे मञ्जिल, तीसरे मञ्जिल तक उनको पहुँचा, उनसे विदा लेकर चलते जाते थे। मन्त्री व अन्य सामन्तों ने चौथी मञ्जिल पर राजा से विदा ली। केवल विजय ही छठी मञ्जिल तक उनके साथ गया और उनसे बिदा ले कर, जल्दी जल्दी नीचे उतर आया और लोगों से मिलकर उसने पूछा-"मन्त्री कौन हैं?" "जी हुज़ूर, मैं ही हूँ।" मन्त्री ने कहा।

मन्त्री के इस विनीत वर्ताव के कई कारण थे। इस नौजवान को, राजा ने बिना माँगे ही, दरबार में बुलाकर दर्शन दिया था। बाद में, राजा ने उसको राज-सिंहासन के पास ही आसन दिया था। दरबार खतम होने के बाद जब और लोग राजा से बिदा लेकर चले गये थे, वह राजा के साथ चलता गया था।





पर निकल गया। जहाँ जहाँ उसको नये नये बड़े बड़े भवन दिखाई देते तो वह उन मकानवालों से पूछता- "सड़क बड़ी करनी है। यह घर किसका है? मालिक को बुलाओ।"

पहले मकान मालिक ने आकर कहा-"जी हुजूर, यह मकान मेरा है।"

आप तुरन्त घर खाली कीजिए। इस मकान को गिरा देना है। देख क्या रहे हो? हटाओ।" विजय ने कहा।

दूसरों की उपस्थिति में, राजा और इस युवक में कोई बातचीत न हुई थी। अगर कुछ बातचीत हुई होगी तो एकान्त में हुई होगी। इसलिये मन्त्री ने सोचा, न जाने यह युवक राजा का कितना विश्वास पात्र हो। इसी कारण वह घबरा रहा था। "ओह, आप ही मन्त्री हैं? तो मुझे तुरन्त हज़ार कूली, फावड़े वगैरह दिलवाइये। सौ गज की जञ्जीर और तीन सौ सैनिक भी चाहिए।" विजय ने कहा।

यह सोचकर कि राजा की आज्ञा होगी, मन्त्री ने तुरन्त सारा प्रबन्ध कर दिया। विजय, कूली, सैनिक, फावडे, जञ्जीर आदि लेकर, सड़क

मकान मालिक घबरा गया- "महाराज थोड़ी देर ठहरिए। जरा एक मिनट अन्दर आइए।" कहता-कहता, वह विजय को घर के अन्दर बुला ले गया। थैलियों में रुपया-पैसा भरकर, उसके सामने रखते हुए मकान मालिक ने कहा-"दया कीजिये, मेहरबानी कीजिए। नया घर है। अभी देहली की हल्दी भी नहीं सूखी है।" "अच्छा" कहता, विजय रुपयों की थैली लेकर एक और जगह पहुँचा। इस तरह, उसने शहर में घूमते घूमते, शाम तक बेहद रुपया-पैसा इकट्ठा कर लिया। अन्धेरा हो जाने के बाद उसने उन नौकर-

चाकरों को इनाम देकर कहा-"अब तुम जा सकते हो। काम होगा तो तुम्हारे पास खबर भिजवा दूँगा।"

अगले दिन विजय ने उस धन से शहर के बीचों-बीच एक सात मञ्जिला मकान खरीद लिया। उसने उसे क़ीमती चीज़ों से सजाया, सोने के झूले लगवाये। तरह तरह की रोशनी का प्रबन्ध किया, और वह हेमा के साथ उसमें आराम से रहने लगा।



महीना खतम हो गया था। फिर एक बार भीमवर्मा वेष बदलकर नगर में घूम-फिर रहा था। उसने नगर के बीच एक सत मञ्जिला मकान देखा, जो खूबसूरती में राज महल को मात कर रहा था। पहले उसने इतना जगमगाता हुआ मकान वहाँ न देखा था। राजा ने उस मकान के बारे में तहकीकात की। राजा को जब यह मालूम हुआ कि वह मकान उसी युवक का था, जिसको एक महीने पहले दरबार में बुलाया गया था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

"यह कोई बहुत चतुर मालूम होता है। जो कहा था वह इसने करके भी दिखा दिया है।" यह सोच राजा ने विजय को बुलाकर सब कुछ मालूम कर लिया। उसका मन्त्री नलायक था, उसकी जगह राजा ने विजय को अपना मन्त्री नियुक्त किया। विजय बहुत खुश हुआ।

काफी समय बीत गया। हेमा का एक लड़का पैदा हुआ। मन्त्री के लड़का पैदा हुआ है, इस खुशी में, देश में सर्वत्र उत्सव मनाये गये। परन्तु हेमा स्वयं सन्तुष्ट न थी। उसका पति, जो उसके पिता के राज्य में राजा होने का अधिकारी था, एक राजा के नीचे मन्त्री था, उसके लड़के को जिसको युवराज कहकर पुकारा जाना चाहिए था, मन्त्री कुमार पुकारा जाता सुन

उसको दुःख होता। वह हमेशा अपने देश, और पिता के बारे में सोचती रहती।

परन्तु हेमा अपने देश को नहीं जा सकती थी। अगर वह कहीं दिखाई देती तो बलवर्धन उसका सिर धड़ से अलग कर देता। इतने दिनों बाद यह साबित करना असम्भव था कि सौतेली माँ ने उसको मारने का प्रयत्न किया था। फिर यह सिद्ध करने के लिये कि वह किसी के साथ चली गई थी, उसका पति और लड़का, प्रत्यक्ष वहाँ थे ही। इस वजह से हेमा घर जाने की इच्छा को मन ही मन में रखती।

पर सत्य छुपाये नहीं छुरता है। उस ब्राह्मण ने, जिसने पहिले पहल उसको आश्रय दिया था, राजा के पास जाकर सच कह दिया। जब वह शिकार खेलने गया हुआ था, तब उसकी पत्नी ने हेमा को मारने का प्रयत्न किया था और किसी युवक ने उसकी रक्षा की थी और जान बचाने के लिये वे कहीं चले गये थे यह जान कर राजा को बड़ा खेद हुआ। उसने अपनी पत्नी को जेल में कैद कर दिया और लड़की को ढूँढ़ने के लिए चारों ओर आदमी दौड़ाये। इनमें से कुछ जयपुर भी पहुँचे। विजय ने यह बात हेमा से कही।

जब उसको यह मालूम हुआ कि पिता उसकी इतनी खोज करवा रहे हैं, हेमा को बड़ा आनन्द हुआ। तब विजय ने सारी बात भीमवर्मा से कही और उनसे बिदा लेकर वह पत्नी और पुत्र के साथ करिपुर चला गया। बलवर्धन के सन्तोष की सीमा न थी। उसने अपना सिंहासन विजय को दे दिया, और अपने पोते को युवराज घोषित कर दिया।





राजा की सेवा करना तलवार के धार पर चलना है। यद्यपि राजा भोज कालिदास को अपने प्राणों के समान देखता था, फिर भी वह उससे नाराज हो गया और कालिदास धारा नगरी छोड़कर चला गया। कालिदास के चले जाने के बाद राजा मोज के पण्डितों में एक प्रकार की अराजकता पैदा हो गई। उन पण्डितों में तीन चालाक व्यक्ति आ मिले थे। उनमें से एक ऐसा था, जो कुछ वह एक बार सुनता, वह याद कर लेता, दूसरा दो बार सुन लेने पर याद कर लेता और तीसरा तीन बार सुनने पर। यह थी हालत।

जो कोई कवि नया श्लोक बनाकर सुनाता तो राजा भोज उसको पुरस्कार देकर सम्मान किया करता। पर इन तीनों के आने के कारण पुरस्कार की यह परिपाटी भङ्ग हो रही थी क्योंकि अगर कोई आकर कोई श्लोक सुनाता, तो इन तीनों में से पहला उठकर कह देता- "मैंने यह श्लोक सुन रखा है।" और वह भी पूरा श्लोक झट सुना देता। तब तक दूसरा व्यक्ति दो बार सुन चुका होता था, वह भी श्लोक को दुहरा देता। उसके बाद तीसरा व्यक्ति भी वही श्लोक सुनाता। तब राजा भोज को भी विश्वास हो जाता कि वह कोई पुराना श्लोक है। श्लोक बनानेवाला कवि अपमानित होकर चला जाता।

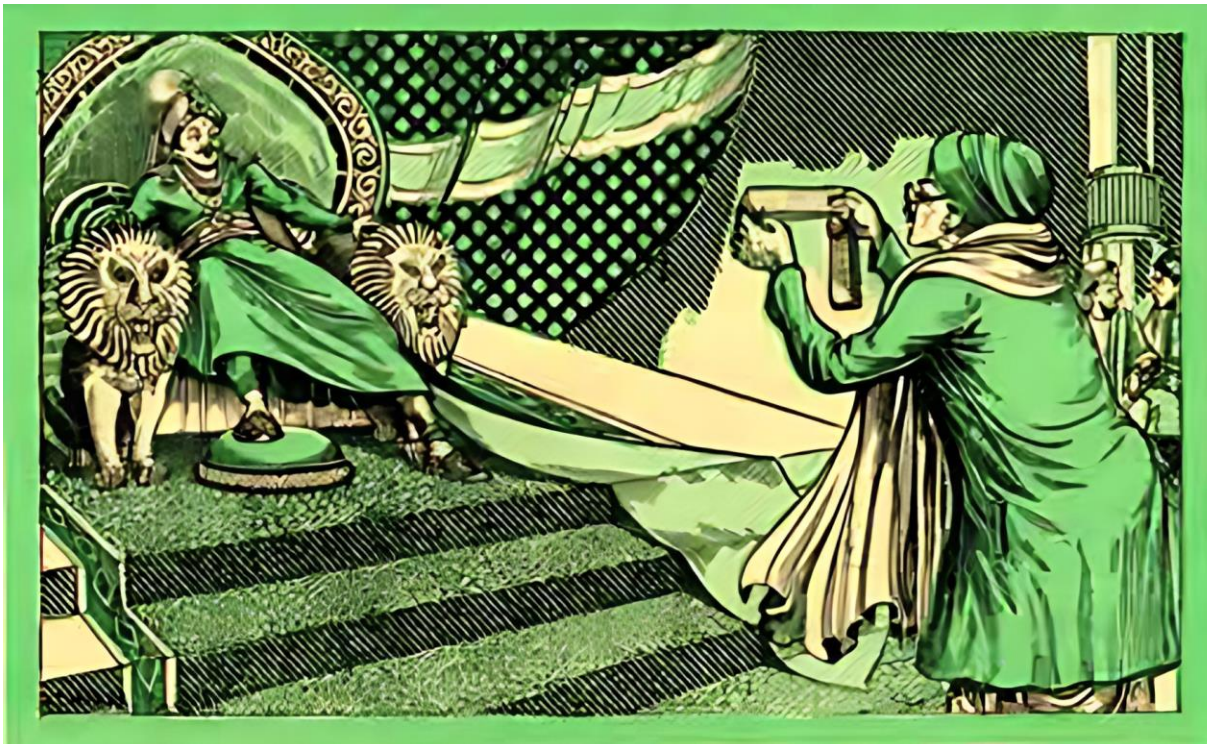
इस तरह कई पण्डित नये श्लोक बनाकर राजा भोज के दरबार में आये। उनको पुरस्कार तो मिलता न था, उलटे अपमानित होकर जाते। इस तरह एक अपमानित पण्डित, एक बार कालिदास को किसी दूर देश में मिला। उसने पूरा हाल सुनाया।

श्री रमेशचन्द्र श्रीवास्तव

पण्डित का कड़वा अनुभव सुन कालिदास बहुत चिन्तित हुआ। उसे पता लग गया कि उसके चले जाने के बाद राजा भोज के दरबार की यह अधोगति हो गई थी। कालिदास ने राजा भोज और उसके तीन पण्डितों को पाठ सिखाने के लिए, पण्डित को एक श्लोक लिखकर देते हुए कहा-"यह श्लोक राजा भोज के दरबार में पढ़िये, आपको जरूर पुरस्कार मिलेगा।"

पण्डित श्लोक लेकर, राजा भोज की राजधानी, धारा नगरी में पहुँचा। "राजन्! मैं एक नया श्लोक बनाकर लाया हूँ। सुनकर पुरस्कार दिलवाइये।" पण्डित ने निवेदन किया। राजा भोज ने श्लोक पढ़ने के लिये कहा। पण्डित ने श्लोक सुनाया। इसका अर्थ था :

"श्री भोज राज स्वस्ति! तीनों लोकों में प्रसिद्ध दाता, धर्मात्मा आपके पिता ने मुझसे



९९ करोड़ रत्न लिए थे। मुझे वे रत्न दिलाइये। ये पण्डित भी जानते हैं कि यह बात सच है। अगर न भी जानते हो तो मुझे इस श्लोक के लिए कम से कम एक लाख रन दीजिए।" का श्लोक क्यों लिखा "

यह श्लोक सुनते ही वे तीनों पण्डित बड़ी दुविधा में पड़े। अगर वे कहते हैं कि उन्होंने पहले ही यह श्लोक सुन रखा है, तो वे इस बात की गवाही दे रहे होते हैं कि राजा भोज के पिता ने इस पंडित से ९९ करोड़ रत्न लिये थे। यह बात इस श्लोक में लिखी ही है। इन रत्नों के बारे में वे भी नहीं जानते होंगे, जिन्होंने यह श्लोक सुना नहीं होगा। अगर वे कहते हैं कि वे यह श्लोक नहीं जानते हैं, तो यह श्लोक नया माना जायेगा। राजा भोज को सिर्फ एक लाख रत्न ही देने पड़ेंगे। इसलिये दरबार में सबने मान लिया कि वह नया श्लोक ही था। राजा भोज ने लाख रत्न पण्डित को पुरस्कार में देकर पूछा-"क्यों पंडित जी! आपने इस तरह का श्लोक क्यों लिखा?"

पण्डित ने राजा भोज से सब कह सुनाया। कैसे पहले उसने उनके दरबार में एक नया श्लोक सुनाया था और इन पण्डितों ने कहा था कि वह पुराना श्लोक है और कैसे उसका अपमान हुआ था। फिर उसने बताया कि किसी ब्राह्मण ने उसको यह श्लोक लिखकर दे दिया था।

राजा भोज को तुरन्त सन्देह हुआ कि इस श्लोक को लिखकर भेजनेवाला कालिदास ही हो सकता है। वह उस पण्डित के साथ कालिदास के पास गया। उसने उनसे क्षमा माँगी और सादर, फिर उनको धारा नगरी वापिस ले आया।





एक शहर में एक रईस की सुकुमारी नाम की एक लड़की थी। वह लड़की बहुत आलसी और कामचोर थी। हमेशा खेलती-कूदती रहती। जब वह सयानी हुई, तो उसका पिता, उसके विवाह के लिए बरों की खोज करने लगा। सुकुमारी ने किसी को पसन्द न किया। आखिर उसने गरीब घराने के एक सुन्दर नवयुवक से विवाह कर लिया। परन्तु विवाह में उस नवयुवक से प्रतिज्ञा करवायी गयी कि वह कभी उसे न मारे-पीटे, न डाँटे-डपटे ही।

सुकुमारी ससुराल आ गई थी, पर उसमें कोई परिवर्तन न आया। वहाँ भी वह आलसी बनी रही। भूलकर भी कभी कोई काम न करती। हमेशा अपनी पालतू बिल्ली से खेलती रहती। उस पर वह जान देती थी।

सुकुमारी के पति को सूझता न था कि क्या करे। घर हमेशा गन्दा रहता। किसी दिन भी वक्त पर खाना न बनता। जब वह पूछता कि क्यों खाना समय पर नहीं बनता, तो वह कोई उटपटाँग जवाब देती।

थोड़े दिनों में ही पति उसकी हरकतें देखकर ऊब गया। उसने कई बार पत्नी को मारने की सोची, पर प्रतिज्ञा को याद कर वह अपने गुस्से को काबू में कर लेता।

आखिर पत्नी को सबक सिखाने के लिए उसे एक उपाय सुझा। एक दिन सुकुमारी की बगल में बिल्ली को पा उसने कहा-"अरी बिल्ली! मैं जब दोपहर को वापिस आऊँ तो घर साफ रहे। खाना बनाकर तैयार रख। नहीं तो तुझे सजा दूँगा।" जब वह दोपहर को आया तो घर वैसा

ही गन्दा था। चूल्हे में आग तक न थी। सुकुमारी बिल्ली से खेल रही थी।

उसके पति ने गुस्से में, बिल्ली छीन ली। जब सुकुमारी ने उसको पकड़ना चाहा तो उसने अपने पञ्जे से खरोंच दिया।

सुकुमारी का पति बिल्ली से पूछने लगा-"मैं सवेरे तुझे क्या कह कर गया था? तूने क्या किया है?" वह उसकी बिल्ली को ही पीटने लगा।

बिल्ली के खरोंचने के कारण सुकुमारी के हाथ में खून बह रहा था। पर वह बिल्ली को पिटता न देख सकी। उसने पति से पूछा-"उसे क्यों पीटते हो? क्या कहीं कोई बिल्ली घर में बुहारी देती है, या खाना तैयार करती है?"

पति ने गुस्से में बिल्ली को फेंकते हुए कहा-"मैं वह सब नहीं जानता हूँ। इस घर में, मुझे इस बिल्ली से ही कहकर काम कराने का अधिकार है।"

इतना सब होने पर भी सुकुमारी न बदली। अगले दिन जब पति वापिस घर आया तो उसने फिर उसके हाथ से बिल्ली छीनकर पूछा-"तुझे अभी तक अक्क न आई।" उसे उसने खूब पीटा। इस बार भी अपने को बचाने के लिए बिल्ली ने सुकुमारी को खरोचा। सुकुमारी ने घबराते हुए कहा-"यह बिचारी बिल्ली मर ही जायेगी।"

"अगर तुझे इस पर इतनी दया है, तो जो काम मैं इसे बताया करता हूँ, वह तू ही कर।" पति ने कहा।

जब उस दिन वह घर वापिस आया तो घर शीशे के समान चमक रहा था। खाना तैयार था। बिल्ली के प्रेम के कारण सुकुमारी बहुत बदल गई थी।





एक गाँव में धनगुप्त नाम का धनी रहा करता था। दुनियाँ भर के पाप करके उसने करोड़ों रुपया जमा कर लिया था। उसको आदर्श मानकर और कई व्यापारी भी लखपति हो गये थे। धनगुप्त बूढ़ा हो चला था। ज्यों ज्यों मौत पास आनी जाती थी, वह अपने पापों के बारे में डरने लगा। जिन्दगी भर तो पाप किया, अगर अब भी थोड़ा बहुत पुण्य न कनाया, तो न जाने कि नरक में क्या क्या यातनायें सहनी पड़ेगी? यही डर सता रहा था। पुण्य कमाने के लिये उसने तीर्थों की यात्रा करने की ठानी। गुप्त को तीर्थ यात्रा पर जाता देख तीन और सेठ उसके साथ जाने को तैयार हुए। उन्होंने भी कभी अपने जीवन काल में पुण्य कमाने का नाम न लिया था।

धनगुप्त, बिना किसी उद्देश्य के कोई काम न करता था। इसलिए उसने सोचा-"पुण्य की बात तो अलग, इस यात्रा से, हो सकता है और भी कोई लाम हो जाय। ये लाभ भला वे क्यों न उठायें? अलावा इसके, चार मिलकर गये तो खर्च भी कम होगा। अगर रास्ते में किसी को बीमारी हो गई तो दूसरे मदद करेंगे।" यह सब सोच धनगुप्त उनको साथ लेकर चल पड़ा।

वे आपस में सोचने लगे कि काशी चला जाय या रामेश्वरम्? यह कहावत तो मशहूर है-"काशी जाना और श्मशान जाना बराबर है।" रामेश्वरम् पास था, रास्ता भी कठिन न था। यही नहीं, उस गाँव में एक रामलाल नाम का शूद्र रहा करता था। वह घरवालों से झगड़कर तीन बार रामेश्वरम् हो आया था। रामेश्वरम् की

श्री बिश्वम्भरलाल नेवर

यात्रा उसके लिए बायें हाथ का खेल थी। इसलिए उसको साथ लेकर उन्होंने यात्रा पर जाने का निश्चय किया।

अच्छा दिन देखकर वे चारों रामलाल के साथ राम नाम जपते जपते रामेश्वरम् के लिए निकल पड़े। यात्रा अच्छी तरह चल में रही थी। अभी दो-तीन दिन का और रास्ता था कि आकाश में काले काले गरजते बादल घिर आये। पहले पानी बरसना शुरु किया फिर आँधी चलने लगी। उस समय वे एक जङ्गल में से जा रहे थे। आँधी के कारण कितने ही बड़े पेड़ टूट टूटकर नीचे गिर रहे थे और ऊपर मेघ भयङ्कर रूप से गरज रहे थे। बिजली कौन्ध रही थी। बिजली की चमक के कारण उनकी आँखें चकाचौन्ध हो रही थीं।

वे जान बचाकर एक मन्दिर के खण्डहर जा घुसे। तुरन्त बिजली के साथ वर्षा भी अधिक हो गई। मन्दिर के सामने ही बिजली भयङ्कर शब्द के साथ गिरने लगी। बिजली समीप ही एक बड़े पेड़ पर गिरी। पेड़ आधा जलकर खाक हो गया और आधा गिर गया। थोड़ी देर में मन्दिर के और पास करीब पच्चीस



फुट की दूरी पर एक और बिजली गिरी। उन पाँचों के होश हवाश उड़ गये।

"अरे, यह क्या बिजली की वर्षा है! मैंने अपनी ज़िन्दगी में ऐसी वर्षा कभी न देखी। हममें कोई पापी है। उस पापी के कारण ही यह सब हो रहा है।" धनगुप्त ने कहा।

"यह रामलाल ही पापी है। इस शूद्र को साथ लाना ही गलती है। खैर, लाये तो लाये। अब वह हमारे साथ इस पवित्र स्थान में आ खड़ा हुआ है। क्या भगवान नहीं देखते? क्या वे नाखुश नहीं होंगे?" एक और व्यापारी ने पूछा।

चारों ने मिलकर रामलाल को जबर्दस्ती से मन्दिर से बाहर धकेल दिया।

"बाबू ! मूसलधार वर्षा हो रही है। भीग जाऊँगा। दया कीजिये। पुण्य कमाइये। मैं पापी ही सही। अगर आप जैसे पुण्यात्माओं के साथ रहा तो भगवान मेरा कुछ न बिगाड़ेंगे। क्या मेरे एक के कारण भगवान चार को दण्ड देंगे? भगवान ऐसा अन्याय न करेंगे?" रामलाल ने गिड़गिड़ाते हुए उनसे कहा।

जैसे जैसे वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता जाता, वैसे वैसे व्यापारी जिद करने लगे। आखिर उन चारों ने मिलकर रामलाल को वर्षा में धक्का दे दिया। वह भागकर एक पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। तभी ऐसा लगा, जैसे आकाश के टुकड़े टुकड़े हो गये हो। बिजली गरजी, प्रकाश हुआ। जब रामलाल ने आँखें बन्दकर खोली तो सामने मन्दिर न था। सिर्फ पत्थर थे। चारों यात्री भी नहीं दिखाई दिये। बिजली के गिरने के कारण वे मर गये थे।





रंगीन चित्र-कथा चित्र—५